"सरस्वती देवयन्तो हवन्ते"

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग—४

(महाराणाओं के गीत)

सम्पादक—

कविराव मोहनसिंह

प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रथम-संस्करण

वि०सं० २०१४

मूल्य

२॥)

प्रकाशक:—

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

मुद्रक

व्यवस्थापक

उदयपुर प्रेस, उदयपुर

प्रकाशकीय

साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले १६ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, एवं कला विषयक सामग्री की शोध-खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन का काम करता आरहा है। विशेष कर साहित्य संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास-पुरातत्व और कलात्मक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरंतर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ३० महत्व-पूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। साहित्य-संस्थान के अंतर्गत इस समय (१) प्राचीन-साहित्य विभाग (२) लोक-साहित्य विभाग (३) इतिहास-पुरातत्व विभाग (४) अध्ययन गृह और संग्रहालय विभाग (५) राजस्थानी-प्राचीन-साहित्य विभाग (६) पृथ्वीराज-रासो संपादन विभाग (७) भील-साहित्य संग्रह विभाग (८) नव साहित्य-सृजन कार्य एवं (९) सामान्य विभाग विकसित हो रहे हैं। सामान्य विभाग के अन्तर्गत बून्दी के प्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री सूर्यमल की स्मृति में 'महाकवि सूर्यमल आसन' और प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकरजी की यादगार में 'ओझा-आसन' स्थापित किया है। संस्थान की मुख-पत्रिका के रूप में त्रैमासिक 'शोध-पत्रिका' का प्रकाशन किया जाता है एवं नवीन उदीयमान लेखकों को लिखने के लिये प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उनकी रचनाओं का प्रकाशन कार्य चालू किया गया है। इस प्रकार साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में विभिन्न विघ्न-बाधाओं के बावजूद भी निरंतर प्रगति और कार्य कर रहा है। राजस्थान की गौरव गरिमा की महिमामय झांकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है—आवश्यकता है; उसके सुनहले पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के संग्रह से तय्यार की गई है। साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों से ढूंढ ढांढ कर १६,००० के लगभग छन्दों का संग्रह किया है। इस संग्रह में दोहे, सोरठे, कवित्त और गीत आदि कई प्रकार के छन्द सुरक्षित हैं। इन छन्दों में विभिन्न ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के

गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों कस्बों एवं गांवों में बिखरे हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम कर रही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जा सकते थे लेकिन साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक-साहित्य के प्रकाशन-कार्य के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान को कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपये की सहायता प्रदान की है; उसी से उक्त पुस्तक का प्रकाशन-कार्य सम्पन्न हो सका है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान सरकार के मुख्यमंत्री (जो शिक्षा-मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहनलाल सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा योग रहा है। इसके लिए मैं, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। साथ ही भारत-सरकार के उप-शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा श्री सोहनसिंह एम.ए. (लंधन) का भी अत्यन्त आभारी हूं; जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवाई। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है। और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत-सरकार के राज्य शिक्षा-मन्त्री डॉ० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति क्या कृतज्ञता प्रकट की जाय; यह तो उन्हीं का अपना काम है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के काम में निरन्तर विकास और विस्तार हुआ है और आगे भी होता रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं, उनका आभार मानता हूँ। अन्य उन सभी का आभारी हूं; जिन्होंने इस काम में सहायता दी है।

विनीत—

गिरधारीलाल शर्मा

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

बसन्त पंचमी

२०१४, सन १९५८

संस्था की ओर से

●●

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से १६ वर्ष पूर्व-प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह-संपादन और प्रकाशन-कार्य के लिये "प्राचीन-साहित्य-खोज विभाग" की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम में, कार्य और प्रवृत्तियों के विकास और विस्तार के साथ परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय इसे साहित्य-संस्थान के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवं कला-विषयक सामग्री का संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन किया जाता है। नवीन साहित्य के सृजन एवं विकास के लिये क्षेत्र और वातावरण पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रतिभाशाली और उदीयमान लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था करने के लिये साधन सुविधाएं एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान में विगत डेढ़ युग से भारतीय साहित्य, उसकी संस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये कार्य किया जाता रहा है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं में से एक है।

उन्नीस वर्षों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप ही आज प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन का कार्य साहित्य संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के द्वारा किया जा रहा है। विगत वर्षों के कार्य-काल में साहित्य संस्थान के द्वारा हजारों की संख्या में प्राचीन राजस्थानी गीत (डिंगल) लोक गीत, लोक वार्ताएँ, लोक कहावतें, ख्यातें और मुहावरें आदि एकत्रित किये जा चुके हैं। लोक कहावतों और लोक गीतों की अब तक काफी पुस्तकें संस्थान की ओर से प्रकाशित की जा चुकी हैं।

राजस्थान में प्राचीन राजस्थानी और हिन्दी-साहित्य का अखूट भण्डार है। इसका अन्वेषण और सम्पादन किया जाय तो राजस्थानी जीवन के सामा-

जिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आदि विभिन्न अंगों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। साहित्य के इतिहास में राजस्थानी प्रतिभाओं का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है; इसका समुचित और सही परिचय आज तक विद्वानों और लेखकों को नहीं प्राप्त हो सका है। राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर का निरन्तर यह प्रयास रहा है कि राजस्थान की ऐसी अन्धकाराच्छन्न प्रतिभाओं को प्रकाश में लाया जाय और उनके साहित्य की रस-धारा से जन जीवन को परिचित करवाया जाय।

उपर्युक्त कार्य कितना मुश्किल और व्यय साध्य है; यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। साहित्य-संस्थान की ओर से अत्यल्प साधनों के होते हुए भी, जितना कार्य किया गया, वह विद्वानों के देखने और सोचने की बात है।

इस वर्ष राजस्थान सरकार की सिफारिश से भारत-सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय के द्वारा ५७,०००) की प्रकाशन सहायता स्वीकार की गई है, इसके लिये मैं राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय, उसके विभाग एवं भारत सरकार के शिक्षा-विकास-अधिकारियों और सलाहकारों का अत्यन्त आभारी हूं। विशेष कर डॉ० कालूलालजी श्रीमाली राज्य शिक्षामन्त्री भारत-सरकार, डॉ० पी. डी. शुक्ला, सलाहकार शिक्षा-विकास-सचिवालय एवं डॉ० सोहनसिंहजी आदि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; जिन्होंने साहित्य-संस्थान के विकास के लिये कृपा कर सहायता स्वीकृत कराई है।

आशा है; भविष्य में भी सभी का सहयोग निरन्तर मिलता रहेगा।

दीप–मालिका
वि. सं. २०१४

विनीत:—
जनार्दनराय नागर
प्रोप कुलपति
राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर

* अनुक्रमणिका *

संपादकीय

किसी कवि ने ठीक कहा है:—

कविः करोति पद्यानिलाल यत्युत्त भोजनः ।
तरुः प्रसूते पुष्पाणि, मरुद्वहति सोरेभम् ॥

इसी के अनुसार राजस्थानी रचनाएं भी सुमन-सदृश हैं और इन्हें पनपाने वाले राजस्थान के राजवंश ही कहे जा सकते हैं। यह भी निःसंकोच कहना पड़ता है कि राजस्थानी साहित्य में असुलभ भाषा※ एवं अधिकतर वर्णन राजाओं तथा राजपूतों से सम्बन्धित होने से इसकी सोरभ राजप्रासादों, राजपूतों एवं कवियों के भवनों तक ही सीमित रही। हां, हरिदास, ओपा जैसे कुछ ही कवियों की रचनाएं भक्ति एवं उपदेशात्मक होने से उसके सौरभ का लाभ औरों को भी प्राप्त हुआ। फिर भी यहां के राजाओं एवं राजपूतों के इतिहास के तथा उनके रहन-सहन रीति-रिवाज और शासन सम्बन्धी जानकारी के लिए यह रचनाएं अधिक उपयोगी हैं। ये रचनायें, राजपूतों के उत्थान-पतन से प्रतिबिम्बित हैं और राजपूती वीरता की चिरमूर्ति तथा उनकी उदारता का दृढ़ स्मारक हैं।

※ इसमें बहुत से शब्द, राजस्थानी बोलचाल की भाषा से इतने दूर के हैं, कि उन्हें समझने में राजस्थान के निवासी भी कठिनाई पाते हैं। उदाहरणार्थ—'सहायक' के लिये 'छल' शब्द, 'हाथ' के लिये 'आंच' आदि। ज्ञात होता है, चारण कवि, सिंध एवं कच्छ प्रदेश से यहां आये और यत्र तत्र देशाटन भी करते रहे। इसी लिये दूर २ देशों के शब्दों का समावेश होजाना स्वाभाविक था। मेवाड़ेश्वर रावल बापा एवं महाराणा गढ़ लक्ष्मणसिंह से संबंधित गीत (पद्य) भी मिलते हैं, परन्तु भाषा की दृष्टि से वे बहुत बाद के रचे गये सिद्ध होते हैं। सर्व प्रथम इसके रचयिता, मारवाड़ में बसे उसके बाद राजस्थान में यत्र तत्र फैले। अतः धीरे २ उनकी भाषा राजस्थान के निवासियों के लिये सुलभ होती गई।

इतिहास बतलाता है, कि एक समय वह था, जब कि भारत में सजातीय-विजातीय वीरों में स्वभावतः युद्ध छिड़ते रहते थे।। उनसे विमुख रहने वाला व्यक्ति कायर, आलसी, अपौरुषेय, निस्तेज एवं निकम्मा समझा जाता था'। वह क्रांति-युग छठी सातवीं शताब्दि से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक चलता रहा। तदन्तरविजातीय कलह से शांति मिली, परन्तु सजातीय कलह समाप्त नहीं हुआ।

मेवाड़-इतिहास से स्पष्ट होता है, कि रावल बापा से लेकर महाराणा राजसिंह (प्रथम) एवं राणा जयसिंह तक हिन्दू धर्म एवं हिन्दू सत्ता के लिए मेवाड़ ने, विजातीय वीरों से लगातार लोहा लिया। राजा और प्रजा ने कितने ही कष्ट सहे, किन्तु अपनी भारतीय मर्यादा का परित्याग नहीं किया। राजसिंह (प्रथम) एवं राणा जयसिंह के बाद भी युद्ध छिड़े, परन्तु विजातियों का प्रताप प्रायः निस्तेज होगया था। इसीलिये मेवाड़ कुछ शांति का अनुभव करने लगा।

महाराणा अरिसिंह (अड़सी द्वितीय) के समय पुनः गृह-कलह की आग भड़की। कृत्रिम राणा रत्नसिंह के पक्ष में होकर कुछ सामन्त महाराणा (अड़सी) से विरुद्ध होगये। यह देखकर महाराष्ट्री, होल्कर, झाला झालमसिंह, अमीरखां एवं पंडारी आदि वीरों ने उस फूट का लाभ उठाया। उन्होंने मेवाड़ का सर्वनाश कर दिया। सोचने पर यह अधिक स्पष्ट हो जाता है, कि जितना नाश विजातीय वीरों द्वारा मेवाड़ का नहीं हुआ, उससे कहीं अधिक सजातीय वीरों द्वारा मेवाड़ का नहीं हुआ, उससे कहीं अधिक स्पष्ट हो जाता है, कि जितना नाश विजातीय वीरों द्वारा बरबादी हुई। कहने को तो यह वीर थे, परन्तु वास्तव में लुटेरों के रूप में हमला करने वाले थे। छोटी २ टुकड़ियों या समूह के रूप में ये जहां तहां फैलकर प्रजा को लूटते, कृषि को उजाड़ते, एवं गावों को जला देते थे। इस प्रकार के पाशविक व्यवहार करने में ही ये अपनी वीरता समझते थे। फौज खर्च के बहाने राज्य का कोष ही नहीं, मृत मेवाड़ के शवरूपी प्रान्त भी इन गिद्धों द्वारा नोंच डाले गये।

मेवाड़ में ही नहीं जयपुर, जोधपुर एवं समूचे राजस्थान तथा मध्य-प्रांत के राज्यों में भी वे उसी तरह उत्पात मचाते रहते थे। इनका साथ देने वाले भी अराजकता चाहने वाले थे। वे हिन्दू, सत्ता और शांति के लिये साथ नहीं देकर अशांति उत्पन्न कर लूट खसोट द्वारा लाभ उठाना चाहते थे। यही कारण है कि सजातीय होते हुए भी उन उत्पातियों से सब राज्यों को घृणा होगई और अंगरेजों के पैर भारत में मजबूत होगये। महाराणा भीमसिंह के अन्तिम समय तक इन सजातियों की आपत्ति से मुक्त होकर मेवाड़ ने चैन की सांस ली और महाराणा स्वरूपसिंह के समय से यहां की जनता सुख की नींद लेने लगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि राजस्थानी कवियों की कविता राज्यों के उथल पुथल एवं शांति के अनुकूल चलती रही। क्रान्ति-युग में उसी हुँकार, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंग्घाड़, तलवारों की झनझनाहट, तीरों की सनसनाहट, भालों की चमक, रणवाद्य और तोपों की गड़गड़ाहट, तुपकों की ठांय २, रक्त प्रवाह की कल २ ध्वनि और शत्र-संकुल रण-स्थल पर प्रकाश डालते रहे।*

टिप्पणीः—* "गढ़ गढ़पत गहलोत गंजिया।"
"खूमाण खीजियो जुते खड़ग हथ'।"
"आया काम दली दल आतां, चोरासी राजा चीतोड़।"
"आड़े राण तणे धड़ ऊभे, चामरियाल न दुरँग चढ़े।"
"जिहान राखबा मथा करे हल्ला हिंदू जूटे, तूटे के मुसल्ला माथा साथा वार तेग।"
"खड़ग पखाण खेड़ंत खेता, थाट खद रण लोट थया।"
"है दल कलल पायदल हूंकल, सीसोदे खबते सनद।"
"राणा तूझ भये रेयाणा थरहरिया सह थाणा।"
"कुंभलमेर न दीन्हों कूंभ, सेना खपे गयो सुरताण।"
"सार धारां रँगी धरा सीसोदिये, ऊजला नीर गता वहे आज।"

ज्योंही क्रान्ति-युग बीता त्योंही राजस्थानी कविता ने भी काया पलट किया और महाराणा अमर (द्वितीय) से वीर-कविता केवल प्रशंसा के रूप में रची जाने लगी ।†

प्रस्तुत 'प्राचीन राजस्थानी गीत' (भाग ४) में महाराणा जवानसिंह से अब तक के राजाओं का वर्णन है । जिसमें उत्सवों एवं उदारता के ही भाव विशेष रूप में पाये जाते हैं फिर भी कवियों को वीर रस की चाट पूरी करने की इच्छा होती, तब वे विजयादशमी के जुलूस आदि के वर्णन में वीर

"तुढि चढ़े प्रिथामल भांजे तोडो, लला तणो वय विहंडे लोहि ।"
"रण चढ़े संग्रामि फेरिया रेवत ।"
"वधिये वकवाद सरस ढिलीवे, चीतोड़ो पोरस चढ़ियो ।"
"रिम हरची घरण कहे यम राणा, हलदीघाट हुवां रण हाक ।"
"रढ रामण नमो अमरसी राणा, मछर समूरत अवली माण"
"जंगम अनड़ चढ़े राय जादो, दहला पड़े उजैण दसौर ।"
"हले पीठाण पछटटां धार, कट्टां जां बाणास हत्था ।"
"जगा तणे असमांद जागवी, जवन तणे धट हूंत न जाय ।"
"आयो अवरंग असी चत आंणे, रोद सरब करवा इक राह ।
रुकां पाण खत्री ध्रम राखे, जण पल में राणो जय साह ।"

† "नागधुहा वालो खग नागो, राई तन ढांकतो रहे ।"
"महण सुरताण री धके छाती मही,
राण री खड़ग बड़वा अगन रूप ।"
"जगड़ दूसरो राजड़ जाणो, तूटे यण समिये तुरकाणो ।"
"सभल्ले केवाण तूंही राणा खायां सारदूल,
हले माथा सूल तूंही आसुराण हूंत ।"
"उतरे दलीरी जिलहे वण दिन, सिलहे करे भूपत सीसोद ।"

देखिये:—'प्राचीन राजस्थानी गीत' (भाग ३) प्रकाशक साहित्य संस्थान राज० वि० विद्यापीठ उदयपुर ।

रस झलका ही देते थे। कभी घोड़े, हाथी, तलवार, भाला, नृप शौर्य, आखेट आदि के वर्णन तत्कालीन कवियों की रचनाओं में उनकी प्रतिभा पूर्ण झलकती है और पर्याप्त रूप में वीर रस का परिपाक हुआ है। जो ी जमाना परिवर्तित हुआ, फिर भी महाराणाओं में अपना वंश गौरव वंश उदारता के भाव बने रहे*। हिन्दू धर्म के प्रति भी उन्हें प्रेम था†। वीर पुरुषों का भी वे सम्मान करते थे×। जागीरें आदि भी वे देते रहे थे+।

इन रचनाओं से इतिहास पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। महाराणा स्वरूपसिंह संबंधी गीतों में उनके आंतक, उन पर राजगुरु होने के फबते भाव, धर्माचरण, वंश विरुद, उदारता आदि पर वास्तविक प्रकाश डाला गया है। इनमें पेशवा के चढ़ आने और लौट जाने का वर्णन ऐतिहासिक है*।

महाराणा शंभूसिंह संबंधी गीतों में अधिकांश आखेट और उदारता का वर्णन हुआ है। परन्तु श्रावणी तृतीया के जुलूस का वर्णन, उस समूचे

टिप्पणीः—* "जूना वेर जगातो वेरियां हूंन करे जाती, न करे बंदगी जाती भूरो प्रथीनाथ।"

† "सरम हिंदूधरम तणी सांगाहरा, मंडाणी आय भुजदंड माथे।"

× "नाहरां सा टोला दोला रखे हिन्दू नाथ।"

\+ "देखो धर काज के हुवा दमंगल, कीत थई दध कांठे।"
दई जवान जका अनदाता, या धरती जस आंटे॥"

टिप्पणीः—* "सादुलां टाण गज घड़ा बांधे सको, राण तो वन कवण डाण राखे।"
"(असी थारी) सुण पाटी गण सारूप।"
"कर धमल डाणां तें कीधां, मुकन मग बहतो सारूप।"
"आगां जेताई मेवाड़ाधीस अथाचां थाधता आया।"
"फकर है धनेसर लंकपत फोज का, कल जिते ओजका धरण कीधा।"
"कोड़ांई थोक सांधणो कस तो, (तो ओ) खागां डंक डसतो खूमाण"

दृश्य को सामने स्पष्ट अंकित कर देता है×।

महाराणा सज्जनसिंह से संबंधित गीतों में उनकी महानता, उदारता, न्याय परायणता का अच्छा दिग्दर्शन हुआ है। इनमें से, बंबई जाने पर महाराणा का शाहजादे (एडवर्ड एलबर्ट) के जुलूस आदि में संमिलित नहीं होना, इतिहास से संबंध रखता है। इसी प्रकार गौरी (चैत्र शुक्ला ३ को होने वाले) महोत्सव संबंधी गीत, गनगौर के मैले आदि की पूर्ण झांकी प्रस्तुत करते हैं एवं उल्लास का पूरा परिचय करा देते हैं। विजयादशमी के जुलूस संबंधी गीतों से सैन्य प्रयाण का पूर्ण आभास होजाता है+।

महाराणा फतहसिंह सम्बन्धी गीतों में आखेट एवं दशहरा के जुलूस का वर्णन हुआ है। पढ़ने से महाराणा की वह वीर प्रतिमा सामने दिखाई देती है।=

× "दल रे राह ऊपरां दपटे, नागद्रहा उडणा निहंग।"
"बंधे दल छाकरी उमँग कोडां ब्रवण, हल रतनाक री मुकट हिन्दू।"
विशेषः— तृतीया के जलूस का वर्णन इसी पुस्तक में पढ़िये।"

+ "सज्जन रहे तूहिज राजां सर, राजा तें सर कवण रहे।"
"छत्र धरां सजन रे तख्त छूटो।"
"अभरियां ठलाठल की सामा अड़त, भरयांने छलाछल भरं भूरा।"
"पूगे आज समंदां पारां, भुज थारा बीजा भीमेण।"
"जाण न दे बाजी ज्या जुवरयां, मांझी नृप मेवाड़ो।
"रहिया डाण चोक गजराजा, राण मचल् गाज तोड़ रह्यो।"
"दलां साज री चहूँ वल् झलाझल् री दमक।"
विशेषः— गौरी महोत्सव के गीत इसी पुस्तक में पढ़िये।

= "राजा तीरंदाजां तीखां तीखो राणेराव।"
"बंधे बेड़ तोपाण पड़ दमँग आगल् बंधे।
तोपतां गड़गड़त मेघ भाद्रव तंधे।"
"फब्यो फतमाल मरजाद रख रामज्यूं,
रूप वो राजसी बस्यो आंखा।"

महाराणा श्री भूपालसिंह उदार एवं शान्त मूर्ति थे। उनके वर्णन में त्याग एवं उदारता के सुन्दर भाव रस प्लावित हो उठे हैं।‡

कवियों द्वारा रची गई इन प्रशंसात्मक कविताओं को हम तोत के (करामाती, कृत्रिम) घोड़े एवं कागजी नौका नहीं कह सकते। वीरता, धीरता धीरता, उदारता, स्वाभिमान* एवं राजसी रूप की सुथरी हुई विधि निर्मित दृढ़ दीवारों पर इन्होंने काव्य-चित्र अंकित किये हैं। कहावत है कि "आवे-चित्र अनूप, भींत प्रमाणे भेरिया।" और "अभित्तिय चित्र कदापि न होय।" अर्थात् जैसी दिवाल होती है, वैसा चित्र खिंच जाता है। ऊबड़ खाबड़ दिवाल पर चित्र सुन्दर नहीं बनता। अस्तु, यही कारण है कि मर्यादा पालक राणाओं के चित्र-चित्रण में कवियों की लेखनी 'सोने में सुगन्ध' का काम कर गई। रचनाएं कैसी हैं? उसका रसास्वादन तो अनु-

‡ "उठे भूपाल रा हाथ आजे।"
' भूप-भूपाल ने भूलजे किण भती'
दुनी में अवतर्यो दीन बन्धु।
त्याग कर महा बड़भाग वसियो मरम,
हिंद रो मारथी ज्ञान सिन्धु॥"

टिप्पणी:—* यह तो अभी की बात है। स्वर्गीय महाराणा श्री भूपालसिंह बड़े स्वाभिमानी थे। जब रियासतें खत्म नहीं हुई थी, तब १६ रियासतों के राजा एवं उनके प्रतिनिधि उदयपुर आये और यह निश्चय करने लगे, कि यदि हमारे राज्य बने रह जाय, तो हमें पाकिस्तान में मिल जाना चाहिये। उस समय महाराणा भूपालसिंह तेश में आकर बोले, कि मेवाड़, पाकिस्तान में कभी नहीं मिलेगा। यह हमेशा विजातियों के विरुद्ध रहा है। हमारा राज्य रहे या न रहे; परन्तु मैं पाकिस्तान में मिल कर अपने पवित्र राजवंश को कभी कलंकित नहीं करूंगा। उक्त घटना, महाराणाओं के स्वाभिमान में क्या अपर्याप्त प्रमाण है? जिन्होंने कि सर्वस्व गँवा कर भी स्वाभिमा को ठेस तक नहीं पहुँचने दी।

बाद से प्राप्त कर ही सकेंगे। फिर भी हम मानते हैं कि प्रस्तुत संकलन में आई हुई कविताएं सरस, सालंकृत एवं चित्ताकर्षक हैं।

इसके संपादन में मुझे अधिक सुविधा हमारे साथी श्री कृष्णचन्द्रजी शर्मा द्वारा मिली एवं हमारे अध्यक्ष श्री गिरधारीलालजी शर्मा ने भी जो सहयोग प्रदान किया है, तदर्थ मैं आभार प्रदर्शित करता हूँ।

संपादक

कविराव मोहनसिंह

प्राचीन थानी

भाग—४

[१] महाराणा जवानसिंह*

[१] गीत

लागे न धोकां त्रवाटां चीहूँ तरफ्फां बाहरां लूंबै ।
बाबरेलां बींटिश्रौ खाथारांह बसेस ॥
जोध घांसाहरां लीधां अजेकां उखालै जाड़ा ।
जोस रत्ता नाहरां दकालै जवानेस ॥१॥

श्रँगीठा चसम्मां धीठां श्रंगां काबरैलां ऊपै ।
लोपे ढाबरैलां के अजेड़ै केड़े लाग ॥
काल़ का सा धक्का जावै गजां छाबरेलां केही ।
बाबरेलां पटेतां गुड़ावे भूरो बाघ ॥२॥

बिहूँ चरख्खां झाळकां सा श्रनेकां खौहता बंसां ।
साथी काल़ का सा तत्ता सोहता सुभाव ॥

*टिप्पणीः— यह बड़ा पितृ-भक्त एवं उदार राणा था । वि० सं० १८८५ में यह गद्दी पर बैठा । जब लार्ड विलियम बैंटिङ्क राजस्थान में आया, तब यह अजमेर जाकर उससे मिला । पितृ-भक्ति वश इसने गयाजी की यात्रा यात्रा बड़ी धूमधाम से की और दान पुण्य भी बहुत किया । वि. सं. १८९५ मे निःसंतान इसका देहान्त हुश्रा ।

होत आप मत्ता जावै गयंदां डोहता हलै ।
रीस रत्ता (नो) हत्ता पछाड़ै राणैराव ॥३॥
झाले सोर-भख्खी प्रथीनाथ रै सकारी झोका ।
सोभाग टँकारां दधां सात रे सुणाव ॥
भाँज डाला मथा हेके साथरै बणाया भूरे ।
बाघंबरा तणा शंभुनाथ रे बणाव ॥४॥

रचयिता:— (अज्ञात)

अर्थः—(पहले) जब बाजे बजाते हुए (राणा के) साथी निडर होकर चारों ओर से उमड़ पड़ते हैं, और बबर शेरों को खाद्य वस्तु पर जमाने वाले शिकारी शेरों को घेर लेते हैं, तब राणा जवानसिंह अपने योद्धा एवं सेना के साथ वहां पहुँच जाता है और उत्साहित होकर रोको-रोको ललकारता हुआ उन बेसब्र शेरों के जबड़े चीर देता है ।

जिनकी आंखें जलती हुई अंगीठी के समान हैं, चितकबरे (काली, पीली धारी वाले) जिनके अंग हैं, रोकने वालों को नहीं मानते हैं, बहुतों का पीछा कर के चीर डालते हैं और यमराज की तरह टक्कर देकर कई हाथियों को पाट देते हैं तथा ढीठ हैं उन बबर शेरों को (भी) सिंह-शावक-तुल्य राणा गिरा देता है ।

जिनकी दोनों आंखों का तेज ज्वाला के समान है । जो असंख्य वंशों के नाशक हैं, यमराज के साथी के समान हैं, जिनका स्वभाव उग्र है, स्वेच्छाचारी हैं, हाथियों को जो पछाड़ने वाले हैं ऐसे नौहाथ लंबे सिंहों को महाराणा क्रुद्ध होकर पछाड़ता रहता है ।

शिकार की मस्ती में झूमता हुआ पृथ्वी-पति युवक राणा जवानसिंह, हाथ में तुपक लेकर अपना स्वच्छ यश सात समुद्र पार पहुँचाता है और बड़े २ मस्तक वाले कई शेरों को मार कर एक ही साथ अपने स्वामी शिव के लिये बाघांबरों के साज तय्यार कर देता है ।

[२] गीत

रूठो जवान जठीनै गर्जा–भीमरां भमायै रिमां ।
गाढो भाव आवै थावै ठकाणां गरीस ॥
केलपुरो खूनियां पचावै नथी खून कीधां ।
व्रथा कीधी चाकरी न जावै वीसावीस ॥१॥

लागो खेध खीज में अथाण खळां धारै–लेवा ।
जलालो रीज में लंक देवा जसो जोध ॥
कढाऊ चोगुणा जे केविया ठाम भूले केम ।
सेवियां न भूले सेवा अगंजी सिसोद ॥२॥

राती चखां अमेलो जँगाली चडां छाती रोप ।
साथां जियां सुमेलो व्रभावै हेकै साथ ॥
जूना बैर जगातो बेरियां हूँ न करै जाती ।
ना करै बंदगी जाती भूरो प्रथीनाथ ॥३॥

जाड़ै भाग भीमाणी प्रतप्पो दळां–जाड़ी–जोड़ ।
लखां बीजा अणी पांणी सौ भाग लैसोत ॥
प्रथीनाथ थारा वेहूँ ऊधरां सभावां परां ।
दुजाला वार रा वांरू आजरा देसोत ॥४॥

रचयिताः— (तेजराम आशिया*)

---

*टिप्पणी—उक्त कवि महाराणा जवानसिंह के समाकालीन थे। इनके वंशज इस समय पसूंद ग्राम (तहसील राज समुद्र, मेवाड़) में हैं।

अर्थः—महाराणा जवानसिंह जिनसे रुष्ट हो जाता था, उन मुसलमानों को इस प्रकार झुका देता था मानो महाभारत-युद्ध में भीम ने हाथियों को झुकाया था। इसके विपरीत जिस पर वह (राणा) प्रसन्न होता था उसे अच्छा जागीरदार बना कर ही रहता था। (वास्तव में) यह केलपुरेश्वर खूनियों का अपराध कभी नहीं सहता था; और इसकी की गई सेवा कभी निष्फल नहीं होती थी।

राणा जब क्रोधित होकर पश्चिम देश के शत्रुओं (मुसलमानों) को नष्ट करने की सोच लेता है तब उन्हें खदेड़ने लग जाता है और जब मन-मौजी प्रसन्न होता है, तब लंका प्रदान कर देता है। कलमा पढ़ने वालों (मुस-लमानों) से गये हुए स्थानों की एवज में चौगुने स्थान निकलवा लेने की बात एवं नहीं दबने वाले (स्वाभिमानी) शिशोदिया सेवकों की सेवा को यह कभी नहीं भूलता।

क्रोध से लाल आँखों वाला युद्ध-कर्त्ता (महाराणा जवानसिंह) दुश्मन की छाती पर भाले की धार रख कर उनके प्रति विरोध प्रदर्शन करता है, किन्तु अपने साथियों के प्रति प्रेम दरशाता हुआ उनका मान (इज्जत) आदि बढ़ाता रहता है। यह पुरानी शत्रुता को जाग्रत कर शत्रुओं पर रहम नहीं करता। इतना होने पर भी यह नरेश्वर अपने प्रति की गई किसी की सेवा को भूलता नहीं है।

हे सौभाग्यशाली महाराणा भीमसिंह के सुपुत्र ! तू अपने बड़े २ सैनिकों की जोड़ी सहित सदा तपता रह (राज्य करता रह) और लाखों की संख्या वाली विपक्षी-सेना के तेज (पराक्रम) तथा सौभाग्य को छीनता रह ! हे पृथ्वी-पति ! तेरे उक्त दोनों उच्च स्वभावों (दुश्मन पर क्रुद्ध तथा मित्रों पर खुश होना) को देखते हुए तुझ पर इस समय के अन्य स्थानों के देशाधिपों को वारता हूँ (न्यौछावर करता हूँ)।

गीत [३]

जयो रुद्र अवतार एकादसम जवानां ।
सत्रां वल् कढाणां हेक साथे ॥
सरम हिंदू-धरम तणी सांगा हरा
मँढाणी आय भुज डंड माथै ॥१॥

रमा नेपत भड़ां हुई पुरखत रहन ।
जगत भावी प्रबल्-काज जांणा ॥
लाज हिंदू-धरम तणी सोह लपटी ।
राज भुज आज गै ब्रखत रांणा ॥१॥

अही गैंलोत भींमेण रा उजागर ।
प्रथ्वी मर श्रीत सर-समँद प्राभी ॥
खित धरम पणा री हटी थारा खवां ।
बंस हिंदवाण री आण बाजी ॥३॥

कमँध कछवाह हड-तल मछर धारकां ।
साख त्रिय बारकां न वट साधी ॥
हेरतां बेहरी मंड बापा-हरा ।
ब्रसव ची लाज भुज डंड़ बांधी ॥४॥

(रचयिता:— अज्ञात)

अर्थः—हे सांगा के वंशज राणा जवानसिंह ! तू एकादश रुद्रों के समान है–तेरी जय हो ! दुश्मन की वक्रता (घमंड) को तू मिटा देने वाला है ; यही कारण है कि हिंदू-धर्म की लज्जा आज तेरी भुजाओं पर बलात् आ पड़ी है।

पृथ्वी रूपी नेपथ्य से सामंतों का पुरुषत्व प्रदर्शित होता रहता है। संसार का अब जो भविष्य दिखाई देता है, उसे सँभालना भारी कार्य है। इसी लिये हे महाराणा ! हिंदू धर्म की लज्जा आज तेरी भुजाओं से आ लिपटी है।

अहो। गुहिलोतवंशी राणा भीमसिंह के जगत प्रसिद्ध पुत्र ! (आज) पृथ्वी पर तेरी कीर्त्ति समुद्र के उस पार तक पहुँच गई है। आज क्षात्रधर्म और हिंदू कुल की बाजी तेरे ही कंधों पर आ पड़ी है।

राठोड़, कछवाहा और हाड़ा चौहान) इन तीनों शाखाओं वाले मस्त राजा भी क्षत्रियत्व का साधन न कर सके स्वाभिमान की सुरक्षा न कर सके)। इस प्रकार विधाता द्वारा विपरीत बातें होती देख हे बापाके वंशज, तूने ही विश्व (संसार) की लज्जा अपनी भुजाओं पर मजबूती से बांधली है।

[४] गीत

ओपे वरूथां नाहथां रूप भीड़िया कड़ाला अंगां।
गैं घटां खगाटां वड़ा भड़ाला रँगाव ॥
बयंडा घड़ालां भंज खवतां छड़ालां बुंग।
रोस रत्ता भड़ाला अरघ्घै राणा राव ॥१॥

मार मारा होता बोल मुछारा मुहारां मंडे।
खाग धारां केहों वारां खला खवानेस ॥
जंगा बारां वार पारां तोखारां भेलणो जैहा।
जोरावारां जोधारा आदरे जवानेस ॥२॥

चौधारां धमंका घलै सायकां भणंका चलां।
काढणा त्रबंका बंका ऊनमी उकंद ॥
वडंगा असंकां हकै बाणासा खणंका बगां।
नसंकं सोहड़ा बंका रंजै भीमनंद ॥३॥

सरो संगी सबोला जुधा चखां चोल बोला रंग ।
साबला उतोला आब तोला हेक साथ ॥
केविया वगेला थंडा रंजै रोल बोला कीधा ।
नाहरां सा टोला दोला रखे हींदूनाथ ॥४॥

(रचयिता:— अज्ञात)

अर्थः— जिन वीरों के अंगों पर कवच बंधे हुए हैं, जो वीर-समूह में सिंह-सदृश सुशोभित होते हैं, बड़े २ खड्गों के प्रहारों से करि समूह को काट देना जिनके लिये खेल है चमकते हुए भालों से अश्वारोही सेना को घायल कर जो नष्ट कर देते हैं, ऐसे क्रोध में रँगे हुए वीरों का ही महाराणा स्वागत करता है।

"मार-मार" शब्द के सुनने पर जिनकी मूछें भौंहों से जा मिलती हैं, खड्ग की धार से कितनी ही बार जिन्होंने दुश्मनों को नष्ट कर दिया है और जो युद्ध के समय अपने घोड़ों को रणांगण के पार कर देते हैं, (निडर होकर रण-स्थली को पार कर जाते हैं) उन बलवान योद्धाओं का सम्मान महाराणा जवानसिंह करता है।

चारों ओर से शत्रुओं पर आघात करने वाले, सनसनाते हुए बाण चलाने वाले, बांके वीरों का बांकापन निकाल देने वाले, कंधा न झुकाने वाले निडर होकर (रण में) घोड़ों को आगे बढ़ाने वाले एवं खनखनाते हुए खड्ग चलाने वाले बांके सुभटों से ही राणा भीम का सुपुत्र (राणा जवानसिंह) प्रसन्न होता है।

(रण में दुश्मन को) ललकारते हुए बाण और बरछे चलाने पर जिनके नेत्र अरुण हो जाते हैं, बरछों को उठाने के साथ २ जो आकाश को भी उठा-लेते हैं, असंख्य-यवन वीरों के समूह को जो प्रसन्नता पूर्वक रक्त रंजित कर देने वाले, हैं उन सिंह-समूह सदृश सामंतों को ही हिंदुओं का स्वामी (राणा जगतसिंह) अपने समीप रखता है।

[५] गीत

देखौ धर काज के हुवा दमंगल, कीत थई दध कांटे ।
दई जवांन जिका अनदाता, या धरती जस आंटे ॥१॥
बल राजा आगल लघु बायक, मांगी छल त्रय पेंड मप ।
करता वर कीधो यल कारण, बावन आगल तणो वप ॥२॥
भायां खेध पड़े महभारथ, अपणी कर अपणाई ।
खपगा जिके मेदनी खातर, केरव पाँडव किताई ॥३॥
हरणाकुस डाकी हर लेगो, पोहो आखी सात में पियाल ।
मांडे आणी जिका धर मांडा, डाढ़ा ऊपर दीन दयाल ॥४॥
लालच यल रघुनाथ लुभाणो, जगत लुभाणो जणो जणा ।
खोटा कुलजग बीच खुमाणा, तूं न लुभाणो भीम तणा ॥५॥

(रचयिता:— अज्ञात)

अर्थ:— जिस पृथ्वी के लिये कितने ही वीरों में युद्ध छिड़ा और उन वीरों का यश समुद्र के उस पार पहुँच गया, एसी पृथ्वी को महाराणा जवान सिंह ने केवल यश के बदले में ही (कवियों को) देदी ।

स्वयं की हीनता प्रकट करते हुए छल पूर्वक वचन-बद्ध कर तीन पैर भूमि राजा बलि से मांगने पर भगवान का भी 'बावन' नाम पड़ गया अर्थात् वे छोटे कहलाने लगे ।

इसी पृथ्वी के कारण परस्पर भाइयों में विरोध हुआ और महाभारत युद्ध करके उन्होंने इसे अपनी समझी । इसीके कारण कितने ही कौरव पाण्डव वीर (लड़कर) समाप्त हो गये ।

भयानक असुर हिरण्याक्ष ने इस संपूर्ण पृथ्वी को हरण कर सातवें पाताल में लेजा कर रखी । वहाँ से स्वयं भगवान ने वाराह रूप धारण कर जबर-दस्ती उसे छीना और अपनी दाढ़ों के बल इसे (फिर से) बाहर लाये ।

इस पृथ्वी पर सारा संसार मोहित होता रहा है, यहां तक कि रघु राजा भी स्वार्थ में पड़ कर इस पर मुग्ध होगये। हे खुमाण वंशज राणा भीमसिंह के पुत्र ! इस बुरे कलियुग में केवल एक तू ही ऐसा है, जो पृथ्वी के लालच में नहीं पड़ा और दान में इसे बराबर देता रहा।

[६] गीत

चोड़ा उराटां नराटां जे भुरज्जा तोड़ा धकै चाढ।
नाळी जंत्र जोड़ दो-क-तमाळां नवांन ॥
राखवा भुमत्थां कत्थां गुणां जोड़ा हूँत रीजे।
जोड़ा भांण रत्था घोड़ा समापै जवांन॥१॥
अयाळां सलंबी काच हुलंबी को माच अंगां।
लंबी भावा धार अंबी ऊपरा लेबाह ॥
प्रलंबी तगजां भंबी भांप लेता दीधा पातां।
बाजा हेम साजा कीधां भलंबी बेबाह ॥२॥
नगांचा तुरी सा हात्र भाव पातुरी सा नच्चै।
आतुरी सा सुभावां कुळा छाजवे अनूप ॥
सुगट्टा फरीती छट्टां कावां चक्र बट्टा सा क।
उलट्टा पुलट्टा ज्यौं पटैत पट्टा ऊप ॥३॥
जे बेमांण भूलोक वधाता नाथ कीया जको।
सको देख देख हिया आजळै सूमांण ॥
नरानाथ बीजां मोल लेता हूंस चालै नथी।
(असा) खोल देतां तनै वार न लागै खूमाण ॥४॥
मांणी आथ नजां भौम मभाणी गमांणी माठा।
(जका) ऊधमाणी दो दो हातां सीसोदा अमांन ॥

लुटाऊ तबेलां क्रीत भीमाणी फुलांणी लाखा।
(थारी) जांणी रांणी जायां आखा आलमां जहान ॥५॥

(रचयिताः— तेजराम आशिया)

अर्थः— जिनके सीने विशेष चौड़े हैं, जो टक्कर देकर बुर्जों को तोड़ देते हैं, नाली-यंत्र (बन्दूक या तोप) के (गोलों के) तुल्य द्रुतगामी हैं, नव वयस्क (तरुण) हैं, सूर्य-रथ में जुतने वाले घोड़ों के सदृश हैं, ऐसे घोड़ों को, राणा जवानसिंह खुश होकर पृथ्वी पर अपना नाम बनाये रखने के लिये गुण वर्णन करने वाले कवियों को देता रहता है।

जिनकी आयाल लम्बी हैं, चमकीले काच की तरह जिनकी रोम-राजि चमकती हैं, जो पृथ्वी पर दूर २ तक धात्रा (दौड़) करने वाले हैं जंबु-द्वीप के समान विशाल-(ऊर्ध्व) काय हैं तथा लंबी २ छलांगे भरने वाले हैं, ऐसे घोड़ों को चमकते हुए स्वर्णिम साज से सुशोभित कर दोनों हाथों से शस्त्र चलाने में दक्ष राणा जवानसिंह- कवियों को दे देता है।

जो पर्वत के तुल्य दीर्घकाय हैं, हाव भाव बताते हुए नर्तकी के समान नाचने वाले हैं, अपने वंश के स्वभाव के अनुसार आतुर (चंचल) हैं, सुघड़ चाबुक द्वारा चक्र के समान गोलाकार दौड़ने वाले हैं तथा शीघ्रता पूर्वक उलटने सुलटने में पता चलाने वालों के पटटे के समान घोड़े हैं (उन्हें राणा जवानसिंह कवियों को दे देता है।)।

विधाता ने जिन्हें भूगामी विमान-तुल्य बनाया है, जिन्हें देखकर सूमों (कृपणों) के दिल में ईर्ष्या की आग धधक उठती है (कंजूस व्यक्ति न तो ऐसे घोड़ों को खरीद ही सकते हैं और न दान में देकर यश ही कमा सकते हैं, वे तो केवल जवानसिंह की दान वीरता को देख कर जला करते हैं)। दूसरे राजा जिन्हें खरीदने की इच्छा रखते हुए भी खरीद नहीं सकते, उन घोड़ों को भी रावल खुमाण के वंशज (जवानसिंह) खोल कर (कवियों को) देने में देरी नहीं करता।

धन को वितरित करनेवाले हे स्वाभिमानी महाराणा भीमसिंह के सुपुत्र सिशोदिया-राणा ! तेरी कीर्ति संसार-प्रसिद्ध लाखा फूलाणी की कीर्ति के समान है, जो दोनों हाथों में दान की हलचल मचाकर हय-शाला को खाली कर देने वाली है, अपने देशकी शोभा बढाने वाली है तथा जो कृपणों (कंजूसों) द्वारा गाई जाती है।

[७] गीत

जांणी भूलोक आवगी मारतुंडां री रसंमां जेते।
हुई भुजा डंडां री प्रभत्ता आड़ी हेल ॥
क्रीत जवानेस खंडां-खंडा री खरीद कीधी।
आय छाजे नवै सुंडंडां री उभेल ॥१॥
छके ग्रंथां माठां राजेसुरां री प्रजाळी छाती।
प्रभा नेढ़ दीजे देवतरां री प्रमाण ॥
करी पांच-चत्रां उग्र कारां री तारीफ कीजे
देण री तेहारी पटाभरां री दीवाण ॥२॥
राखी गळां भूलोक अदावां सीस री वारी।
मोर जाणी चोसरा तसीमवा री सांच ॥
बीजा कीधी प्रताप अछूती झोका भीम वारी।
उभे सात हाथियां बरीमवारी आंच ॥३॥
राङ्तना आज रा केण री मीढ दीजे राणा।
थारी जियां मासूर तेण री हींदू थांन ॥
करां झोक लागे गजां देग री टँकारा कीधी।
जेण री अछूती वाता, ऊबरी जेहान ॥४॥

(रचयिता:— अज्ञात)

अर्थ:—महाराणा जवानसिंह की दान-वीरता की असीम विशेषता भूलोक के अतिरिक्त जहाँ तक सूर्य की रश्मियां प्रसारित होती हैं, वहाँ तक फैल गई कि, इसने प्रत्येक खंड (भू-भाग) की कीर्ति खरीद ली है और उमंग में आकर एक ही दिन में नौ हाथी (कवियों को) दान में दे दिये हैं ।

कवि द्वारा रचे गये ग्रन्थों को सुन कर मस्त होते हुए राणा जवानसिंह ने कंजूस राजाओं के दिलों को जला दिया, जिससे कल्पतरु के समान यह (राणा) प्रभावान कहलाया। इस एकलिंग के दीवान (राणा) के उच्च कार्यों की प्रशंसा कहां तक की जाय ? इसने (तो) पट्टा चलाने में कुशल नौ हाथियों को भी दान में दे डाला।

पृथ्वी पर दाढ़ी मूछ रखने वाले जितने भी कंजूस हैं, उनके मुख की बलिहारी है अर्थात् उन्हें लानत है; क्योंकि उन्हें त्रस्त करने वाली तेरी दाढ़ी मूंछों को सब मान गये हैं (कि, वास्तव में दाढ़ी मूछ ऐसे ही दान वीरों को शोभती हैं)। हे दूसरे ही राणा प्रताप (जवानसिंह)! तूने बीस वर्ष के होने पर (दाढ़ी रखने पर) यह एक अनोखी बात ही की है, जो उमंग में आकर नौ हाथी अपने हाथों से दान में दे दिये।

हे महाराणा ! हिन्दुस्तान में आज कौन ऐसे राजा हैं, जो प्रसिद्धि में तेरी समता कर सकें ? (देख तो) तेरे हाथों से दान दिये जाने पर चारों ओर शोर मच गया है (यश-गान हो रहा है) और तूने जो नौ हाथी दान में दिये हैं, उसकी नूतन कीर्ति संसार में अमर हो गई है।

[८] गीत

प्रथी सराहे दान तीरां ऊदध पाज री ।
हमेसा कविंद दोला रहे हाजरी ॥
लीयां खित्रवाट चसमां भरो लाज री ।
जवाना राण जोखां यसी राज री ॥१॥

असं गजां झलूसां सझण असवारि-ा ।

•तोड़ नाखण सत्रा मार तरवारियां

भूप रा विरद पातल़ तणा धारिया ।

थान हिंदू त्रिया हौड़ नहँ थारियां ॥२॥

साबरां गिड़ा नाहर रमण सकारां ।

छड़ाल़ा हूंत उड़ता पटक छकारां ॥

मटावण घटावण उपासक मका रां ।

चढ़ावण आव हिंदू धरम चकारां॥३॥

रूड़े नत नगारां नाद रंग राग रा ।

नसा दारम फरे गल़े कस नागरा ॥

भूम तण सण्तां सरोमण भाग रा ।

बणे थारा उधम बाड़ियां बाग रा ॥४॥

ममद सणगारिया नवल असवारियां ।

प्रथी देखे उछब भूप पाधारियां ॥

अता सुरताल़ गावे नगर-नारियां ।

यंद्र वेमांण नाखाण उणिहारियां ॥५॥

जगन वासां अनै महल जग मंदरां

आठ जामा धरत सहल आणँद रा ॥

अछर भूले विभो देख नरयंद रा ।

आखाड़ो जांण अमरावती यंद रा ॥६॥

वहण नत मंद सीतल़ सुगँध वात रा ।

जू-जुवा कुसम रँग अँग विध जात रा ॥

राण थारा हरख यसा दन रात रा ।
पेहो मठा देख दीपक हुआ प्रात रा ॥७॥
चेबचां नलां छूटत जलां चाद रां ।
बणीया फुहारा रूप बरसाद रा ॥
आप पावे पिये गरक उदमाद रा ।
अरक प्याला सुकव भड़ां कर आद रा ॥८॥
स्याम घण उमँड बरसत घटा सामणी ।
देत परकास दस दस चमक दामणी ॥
करे त्रत गांन मंगल धवळ कांमणी ।
रची रँग रेलिया छोल रलियामणी ॥६॥
दरस छत्र सहर पीछोल दरियाव री ।
त्रमळ जळ लहर ऊजळ बहण नाव री ॥
भंमर गुजार कमळां सुगँध भावरी ।
रीत यण हवा राजा न को राव री ॥१०॥
घड़त जळ–सदन रचिया सुघड़ घाट रा ।
पळँग नग जड़त गदरा समँद पाट रा ॥
चगां पड़दा मठां करण ऊचाट रा ।
थटे दरगाह टोका सुपह थाट रा ॥११॥
केक पकवान गोठां सरस कीजिये ।
पुलांवां मांस सूला परूसीजिये ॥
दुबारा तबारा फूल-मद दीजिये ।
लखां कवि मुखां जस छाक हद लीजिये ॥१२॥

आय गंध्रव सुपत सुरां उच्चारियां ।
रागणी राग खटतीस रभक्कारियां ॥
तान संगीत वाजत्र तत कारियां ।
श्री हतां दतां कारज कतां सारियां ॥१३॥

यळा नव खंड विच कथा राखण अमर ।
भार खित्रवाट रा लियां अणियां भमर
सुरां–पत जेम सुख राम विलसौ सुथर ।
नरांपत जगाहर तपो उदीया–नगर ॥१४॥

(रचयिताः— अज्ञात)

अर्थः— हे महाराणा जवानसिंह ! तेरे दान की उमंग समुद्र के तूफान की तरह है । तेरे आस पास कवि हमेशा बने रहते हैं । जिनके नेत्रों में लज्जा बसी हुई है ऐसे क्षत्रियत्व धारी (स्वाभिमानी) क्षत्रिय भी तेरे पास उपस्थित रहते हैं । यही कारण है कि तेरे यहां ऐसे उत्सव हमेशा मनाये जाते हैं ।

घोड़ों और हाथियों को झिलमिलाते हुए साजों से सजाकर जुलूस निकाले जाते हैं । इसके अतिरिक्त खड्ग-धारण करने में आप स्वयं महाराणा प्रताप सदृश हैं । अतः आपकी समानता करने वाला हिन्दुस्तान में दूसरा कोई नहीं है ।

सांभर (बारहसींगे), सूअर और शेर की शिकार की जाती है । कूदते हुए हरिण आदि (वन्य पशु) को घोड़े दौड़ा कर बरछों (भालों) से मार कर नीचे पटक दिया जाता है । मक्का के उपासकों (मुसलमानों) को नष्ट कर कम किया जाता है । इसके अतिरिक्त पृथ्वी पर हिन्दू-धर्म को उज्वल किया जाता है ।

राग रंग के साथ हमेशा नक्कारे बजाये जाते हैं, मादक पदार्थ और वारुणी के प्याले फिराये (वितरित किये) जाते हैं, अफीम (एक पेय पदार्थ

बताने के लिये) घोटी जाती है। (इस प्रकार) हे राजकुमारों के शिरोमणि सौभाग्यशाली भीमसिंह के पुत्र ! तेरे बगीचों में ऐसे उत्सव होते ही रहते हैं।

जब मतवाले हाथियों को नूतन सज्जा से (अनोखे). सजा कर बढ़ाया जाता है, तब सारा संसार इकट्ठा होकर आपके जुलूस को देखने लग जाता है। विमानों द्वारा इन्द्रलोक से उतरी हुई परियों के समान सूरत वाली वेश्याएँ स्वर और ताल के साथ आपके सामने नृत्य एवं गान करती हैं।

जगनिवास और जगमन्दिर नामक महलों में आठों पहर आनन्द ही आनन्द छाया रहता है, जिसे देख कर अप्सरायें भी अपने को भूल जाती हैं। वहां ऐसा दिखाई देता है. मानो अमरावती स्थित इन्द्र का अखाड़ा (रंगभूमि) आ जुड़ा हो।

वहां शीतल, मद और सुरभित पवन बहता है, त्रिविध रंग के जहां पुष्प खिले हुए हैं। हे महाराणा ! आपके ऐसे रात दिन के उत्सवों को देख कर अन्य कंजूस राजा प्रातःकालीन दीप की तरह कांति हीन हो जाते हैं !

चहबचों (होजों) में नलों (जल यन्त्रों) द्वारा जल फैलता हुआ बहता रहता है और फौहारे छूटते हुए बरसात के समान छटा छा देते हैं। ऐसे समय में आप स्वयं गहरे उन्माद वर्धक आसव के प्याले पीते हैं सामंतों तथा कवियों को सम्मान पूर्वक पिलाते हैं।

जब श्याम बादल उमड़ते हैं और सावन में घटायें बरसने लगती हैं. दशों दिशाओं में चमकती हुई बिजली प्रकाश फैलाती है, तब सफेद महलों में कामिनियां मंगल गान के साथ नृत्य करती हैं। हे महाराणा ! इस प्रकार ये तेरी उमंगें विनोद की लहरियां उठाया करती हैं।

नगर-निवासी पिछोला तालाब की छटा देखते रहते हैं। उसमें निर्मल जल की तरंगे उठा करती हैं, जिसमें नाव चलती है, जहां पर खिले हुए कमलों की सौरभ पर भौंरे गुंजार करते हुए दिखाई देते हैं। (हे महाराणा !) ऐसा समय अन्य राव एवं राजपद धारियों को कहां मुनस्सर (प्राप्त) है ?

पानी के अन्दर बड़े ही अनोखे ढंग से महल बनाये गये हैं, जिनमें नग जटित पर्यंकों पर समुद्र के समान उज्वल बिछौने बिछाये गये हैं और चर्के एवं परदे लगाये हैं, जो कंजूस पुरुषों के हृदय को उदास करने वाले हैं। हे महाराणा ! आपकी सभा में उपस्थित रहने वाला जन-समुदाय राजाओं के समान है ।

विविध पकवान बना कर भोजनोत्सव मनाया जाता है, जिसमें अनेक प्रकार से आमिष भोज्य-पदार्थ भी परोसे जाते हैं और दो तीन बार यंत्र द्वारा उलटाई हुई मदिरा पिला लाखों कवियों की जिह्वा से यश-मदिरा का स्वाद लिया जाता है ।

उसी समय गंधर्व (गायक) उपस्थित होकर सात स्वरों का उच्चारण करते हैं और संगीत की लय पर तत्व युक्त बाजे बजाते हैं अर्थात् शास्त्रीय संगीत होता है। छः राग छ:तीस ही रागिनियां गाई जाती हैं। हे महाराणा उस समय आप अपने हाथों से दान देकर बहुतों की इच्छा पूरी कर देते हैं ।

हे पेनी मूछों वाले, क्षत्रिय तेजधारी (स्वाभिमानी) राणा ! तू इस नौखंड पृथ्वी पर अपना नाम अमर करने के लिये इन्द्र के समान विनोद-लीला करता रह और हे जगतसिंह के वंशज ! तू स्थिर रूप से उदयपुर पर तपता रह (राज्य करता रह)।

[६] गीत

मांडा घोरिया बिरूता जे हजारां डाक दारां मळे ।
बेढ़ीगारा फरे नक्रो फेरिया अबोध ॥
जुडंतां लोयणां खारा तूटा गैण तारा जेम ।
जूटा बे अगड़डां माथै राड़ीगारा जोध ॥१॥
चढ़े कोप रढाळां धखंता धोम झाळां चखां ।
आटपाटां मदां खाळा बूठना औनाड़ ॥

वळा आड़ा अद्र सा जवांन प्रथीनाथ वाळा ।
बागा नाग काळा जंगां पटाळा बे छाड़ ॥२॥
घले जोम हूँतां फील दंता आड़–सल्ला घाव ।
हल्लां फौजदारां धूबे पोग रां निहाव ॥
बाज सिंधू नदां पूर छायौ गैण वृंदारकां ।
गजा राज हूँता चौड़े जूटौ गाढै राव ॥३॥
बे बीरांण धूत चंडी पूत सा कुसत्ती बागा ।
आट पाटां मदां राह रूत सा अघाय ॥
सागे जज दूत सा अभूता चखां झाळां सोर ।
बिराता अखाड़ै काळा भूत सा बलाय ॥४॥
राती साळ पूळा चखां अद्रसा अफारा रूप ।
कांबी द्रोण धारा मदां चूवता कपोळ ॥
लालंबरां स्रोण रदां सोहता भचक्का लीधां ।
कीधा चोळ बोळा जाणै नवोढ़ा कँकोल ॥५॥
खूंटा तला डाणां फील झूटा प्रलैकाळ खूनी ।
जाणे जरासंध जंगा जूटा भीम जेम ॥
रूठा बीर भद्र धावा चाचरां बंबाळ रतां ।
तूटा दंतां फाचरा दोज रा चंद्र तेम ॥६॥
खूनी बे बीरांण जंगा बिलागा धकता खेध ।
मागां गैण पागा वीर तमासे मुनंद्र ॥
लौह लाठ अगंजी प्रवाड़े पूर डाणे लागा ।
जाणे चौड़े धाड़े बागा अखाड़े जोगंद्र ॥७॥

रचक्कां दयंता सूंडा पलेटा नागरै रूप।
भ्रसुंडा चलूळ सोण छळक्का भरांण॥
मचक्कां लचक्के धुके नाग रा हजार माथा।
अछक्कां रदन्नां भडां भचक्कां आरांण॥८॥

मलै सेन चौतरफां वाज हाक सांठ मारां।
झगे फूला आतसां चरक्खी धोम झाल॥
तनां सेल फूटा छूडां अनेका बरंड तूटा।
छूटा नीट नीठ रौळां गांण रा छैंछाल॥९॥

बधावै खुराकां पर बापो कारे ठाण बाधा।
भैभीत अमाधा अद्र अंगा भास मांन॥
वीरांण अगंजी खेल हींदूनाथ बाखांणियौ।
जाणियौ आराण गजां आलमाँ जिहाँन॥१०॥

(रचयिताः— तेजराम आशिया)

अर्थः—हाथियों को छेड़ने वालों के समूह ने जब एक दूसरे के सहयोग से मदोन्मत्त हुए हाथियों को बलात् घेर लिया, तब वे मार-कूट मचाने वाले हाथी जो मस्ती के कारण अंधे (ज्ञान शून्य) थे, और किसी के फिराने पर भी नहीं फिरते थे एवं जिनके क्रोध पूर्ण नेत्र एक दूसरे से मिलते ही—आकाश से तारे की तरह—टूट पड़ने वाले थे, झगड़ालू योद्धाओं की भांति अगड़ (अर्गला) पर आकर झूम पड़े।

क्रोध से छके हुए हठीले हाथियों के नेत्र धधकती हुई सधूम आग की लपटों के समान थे, अपार मद-प्रवाह से वे नद के उद्गम पर्वतों से दिखाई देते थे। (वास्तव में) महाराणा जवानसिंह के हाथी अरावली के पहाड़ों की तरह

दीर्घ काय थे। जब वे युद्ध करते थे, तब काले सांप के समान क्रुद्ध होकर पटा*
झाड़ने लगते थे।

जोश में आकर हाथियों ने जब अर्गला की शिला पर दंत प्रहार किया, तब महावतों के ललकारने पर अथवा विश्वास युक्त वचन कहने पर वे फुत्कारने लगे। सिंधु राग में वाद्य बजाये जाने पर इस दृश्य को देखने के लिये आये हुए देवताओं से आकाश भर गया। उसी समय एक गजराज दूसरे हाथी से योद्धा की तरह भूझ पड़ा।

दोनों हाथी भिड़े तो ऐसे दिखाई दिये मानों (बावन वीरों में से कोई) दो धूर्त वीर भिड़े हों या मल्ल-युद्ध-कर्त्ता चण्डिका के पुत्र (भैरव) हों अथवा अपार मद-वर्षा करते हुए राहु-स्वरूप हो या साक्षात् बारूद की ज्वाला तुल्य नेत्रों वाले यमराज के दो अद्भुत दूत हों अथवा काले रंग के भयावने दो प्रेत वीरता के अखाड़े में आ डटे हों।

हाथियों की आँखे सुलगती हुई घास की पूली के समान ज्वाला युक्त लाल हो रही थी। हाथियों का शरीर पर्वत के समान विशाल था। कुंभःस्थल से कपोलों पर दुहरी मद-धारा बरसने पर एवं दंताघातों द्वारा स्वयं के शरीर को रक्त-रंजित कर देने से वे ऐसे सुशोभित हुए मानों किसी नवोढ़ा स्त्री ने अपने को सुन्दर सजायी हो।

मदमस्त खूनी हाथी जब अपने स्थान से छूटने पर प्रलय काल के समान दृश्य उपस्थित करते हुए आपस में भिड़ गये, तब ऐसे दिखाई दिये मानो युद्ध में जरासंध और भीम भिड़ गये हों या विदीर्ण मस्तक से खून बरसाता हुआ वीरभद्र रूठ गया हो। पारस्परिक आघातों से एक दूसरे के दांत टूट २ कर चीरे हुए इस प्रकार दिखाई दिये मानो द्वितीया के चन्द्र हों।

योद्धाओं के समान खूनी हाथी एक दूसरे से भिड़ गये। इस वीर-कौतुक को देखने के लिये गगन-मार्ग से योगिराज (शिव आदि) उतरे। लोह-दंड के

* युद्ध के समय हाथियों की सूंडों में तलवारें पकड़ा दी जाती हैं। उसे पटा कहते हैं।

समान वे—नहीं दबने वाले हाथी जोश दिलाने (महावतों की ओर से उत्साहित करने, उपयुक्त वचनावली से बढ़ावा देने) पर इस प्रकार मस्त हो गये मानों प्रत्यक्ष योगीन्द्र अखाड़े में आ उतरे हो।

हाथी टक्कर देते हुए सर्प के समान सूंडों को लपेटने लगे। उनके असुंड (सूंड के ऊपरी भाग) से शोणित-धारा बह निकली, जिससे चुल्लू भरे जाने लगे। हाथियों के आपसी धक्कों से शेषनाग के हजार फन भी लचकने लगे। अपार मस्ती में भरे हुए उन हाथियों के दंताघात इस प्रकार होने लगे, मानों युद्ध-भूमि में योद्धाओं के भिड़ने पर धड़ाके की आवाज हो रही हो।

चारों ओर से सेना द्वारा घेरे जाने पर, सांट मारों (मस्त हाथियों को काबू में करने वालों) द्वारा आतिशबाजी के समान घास के गट्ठे जला कर धूएँ सहित ज्वाला उठाने पर, पकड़ने के यंत्र (चरखी) का उपचार करने पर, शैलों के आघात से उनके शरीर छेदे जाने पर और अनेकों बरछों के बांस टूट जाने पर महाराणा के हाथी बड़ी कठिनाई से उत्पातकारी कौतुक को छोड़ कर दूर हुए।

हाथियों की खुराक बढ़ाई गई और काबू में लाने वालों ने पुचकार कर उन्हें हस्तिशाला में लाकर बांधा। फिर भी वे सुमेरु पर्वत के समान उन्नत काय बेकाबू और भयावने दिखाई देते थे। नहीं गंजे जाने वाले वीरकाय हाथियों की उस लड़ाई को स्वयं महाराणा ने सराही। (वास्तव में) वह युद्ध-संसार में प्रसिद्ध हुआ।

[१०] गीत

सुणे वहक आंबाट दुनियांण बखमा सबद,
जांण धन तन अवन थाट जूटी।
सौक, अवचाट तज जवांन। राण सथ,
आट सतियाँ उमँग आंण ऊठी ॥१॥
करे असनान जळ गंगवल कुल कमल,
साज तन भलळ भूषण सुहातै।

वमल मन सजी करतार उचरै वयण,
सहण झळ अनल भरतार साथै ॥२॥

व्रत दुजाँ दांन धारां कनक बूठती,
प्रभत मुख हजारां ग्रंथ पाठां ।
तेज तन प्रकासे भाण बारा तरह,
कंथ लारा हली चढण काठां ॥३॥

उभै चव्र पासवानां उमँग आणियो,
चता सुब जाणिया उसेज चाहे ।
कीध भटियाणियां रीत सूरज कुंवर,
राणियाँ रीत बाघेल राहे ॥४॥

वैंड असमेद जग परठ परमाण रौ,
बचन निरबाण रौ सांच वीदो ।
निभायो पतबरत नेह नर वाणरौ,
कर हरक रांणरौ साथ कीदो ॥५॥

त्राँबाळां ढोल बज ऐक तालां तठै,
छजे नभ प्रजाळा धौम छायौ ।
तज महल सुढाला लार खामैंद तणौ,
तती झाळां सैहल सुवप तायौ ॥६॥

अळा कीरत रही पखां उजवाळतां,
गालतां अगन झल तन गुलाली।
भीमतण साथ अह नर सुरां भालतां,
चमर सर ढालतां लेर चाली ॥७॥

(रचयिता:— चमनजी)

अर्थ:— महाराणा जवानसिंह की मृत्यु होने पर जो दु:खद वाद्य बजे, उन्हें सुन कर दो रानियां एवं छ: उप पत्नियां पृथ्वी पर अपना जन्म सार्थक करने में लग गई और दु:ख तथा उदासीनता छोड़ कर अपने स्वामी के साथ सती होने के लिये उत्साह पूर्वक तत्पर हुई।

अपने २ वंश की कमल तुल्य सुन्दरियों ने गंगाजल से स्नान किया और चमकते हुए भूषणों से शरीर सजाया। (इस प्रकार वे) ईश्वर का नाम लेती हुई पवित्र मन से अपने स्वामी के साथ अग्नि-ज्वालाओं को सहने के लिये तयार हो गई।

ब्राह्मणों को वित्त और स्वर्ण-दान करती हुई, अपना यश-गान सहस्रों मुखों से समुद्र तट तक करवाती हुई तथा बारहों सूर्यों के तुल्य अपना तेज फैलाती हुई अपने स्वामी के साथ चिता में प्रवेश होने के लिये चली।

महाराणा जवानसिंह की छ:हों उप पत्नियां (पहले) जिस प्रकार पति-मिलन के सुख को चाहती थीं, उसी प्रकार उन्होंने चिता में प्रवेश होते समय भी उत्साह प्रकट किया। इसी तरह जिस प्रकार भटियानियां सती होती आई हैं, उसी रीति को रानी सूर्यकुमारी ने निभाया तथा जिस प्रकार रानियां पति का सह गमन किया करती हैं, उसी तरह रानी बाघेली ने भी अपनी बात निभाई।

स्त्रियों के लिये पृथ्वी से स्वर्ग जाने का जो मोक्ष-वाक्य है, उसे रानियों ने सच्चा कर दिखाया और पातिव्रत्य धर्म को एवं पति-प्रेम को निभा दिया। (वास्तव में उस समय) अपने पति महाराणा (जवानसिंह) के साथ रानियां प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ग प्रयाण कर गई।

तासे आदि बाजे एक ताल (जोरों) से बजने लगे, चिता प्रज्वलित हो उठी और धूम आकाश में छाने लग गया। सतियों ने सुन्दर राजमहलों को तज कर अपने स्वामी के साथ तप्त ज्वालाओं को सहन करके अपने अंगों को भस्म सात् कर दिया।

रानियों ने अपने गुलाबी वर्ण के अंगों को अग्नि में नष्ट कर पिता और पति के पक्ष को उज्वल कर बताया, जिससे उनकी कीर्ति पृथ्वी पर अक्षरण हो गई। वे सतियां मानवों और देवताओं के देखते २ महाराणा भीमसिंह के सुपुत्र (राणा जवानसिंह) के साथ स्वर्गको चली गई।

[११] दोहा

सुतन भीम ववनां सुणै, अह नर सुरां ऊचाट।
जांणे जग भूंठी जठै, ऊठी सतियां आठ ॥१॥

अर्थः— महाराणा भीमसिंह केपुत्र (जवानसिंह) की मृत्यु सुनकर नर, नाग और देवताओं के भी मन उदास हो गये। तब जवानसिंह की दो रानियां एवं छः उपपत्नियां संसार को असत्य (नश्वर) मान सती होने के लिये तत्पर हुई।

साजां जरतारां सजै, तन जवहारां तेज।
हींदू-पत लारां हली, सहण अंगारां सेज ॥२॥

अर्थः— जरीन वस्त्र और जवाहरात के चमकते हुए आभूषण धारण कर वे सब (रानियां एवं उपपत्नियां) हिंदू-पति महाराणा के साथ अंगारों की शय्या पर सोने के लिये चली।

सोरठा

भटियाणी बड़ भाग, जांणी पतबरता जगत।
आख दन तन आग, हेकण छन कीदो हुवन ॥३॥

अर्थः— हे भटियानी ! तू बड़ी भाग्य शालिनी है। तेरे पातिव्रत्य धर्म की प्रसिद्धि संसार में फैल गई है तूने पति की मृत्यु होने पर अपना शरीर आग में होम दिया।

माथे धारण मौड़, भटियाणी कीदौ भलां।
चाड़े जल चीत्तौड़, सतपुर पूगी रांण सथ ॥४॥

अर्थः— हे भटियाणी ! तेरा पति के साथ सती होने के लिये सिर पर मौड़ (सेहरा) धारण करना प्रशंसनीय है। तू चित्तौड़-दुर्ग को अपने सत के के बल से दीप्तिमान करती हुई महाराणा के साथ स्वर्ग चली गई।

बाघेली रजवट बडम, छेली वार संभाल।
सेजां रँगरेली समी, झेली पावक झाळ ॥५॥

अर्थः— हे राणी बाघेली ! तूने अन्तिम समय सावधानी से अपने राज-वंश की आन रखी और महाराणा के साथ जिस, प्रकार तू सुख-शय्या पर आनंद मनाती थी, उसी प्रकार अग्नि-ज्वाला में भी पति के साथ प्रसन्नता पूर्वक प्रवेश कर गई।

आणी अंजस ईख, गढ रीमां चीत्तौड़ गढ़।
प्रतव्रत दीध परीख, बाघेली सतपुर वसै ॥६॥

अर्थः— हे बाघेली राणी ! तू पातिव्रत्य धर्म में उत्तीर्ण होकर पति के साथ स्वर्ग चली गई और रींवा एवं चित्तौड़ दुर्ग दोनों का गौरव बढ़ा दिया।

जातो सुरग जवांन, सुण बातां वखमा सबद।
साजण आग सनांन, जमना मन उमँगी जठे ॥७॥

अर्थः— महाराणा जवानसिंह की मृत्यु की दुखद घटना सुनते ही उपपत्नि जमुनाबाई सत की परीक्षा देने के लिये अग्नि-स्नान करने के लिये उत्साहित हो गई ।

बेख ऊदा सा बार, तजे उदासा सौक तन ।
उर धर प्रीत उदार, हर हर मुख करती हली ॥८॥

अर्थः— ऊदाबाई ने भी उदासीनता और दुःख का परित्याग कर पति-प्रेम हृदय में बसा "हर-हर" का उच्चारण करती हुई, चिता में प्रवेश किया ।

दल चाही दीवांण, तन मन जिम राही तनै ।
अंत समै अवसाण, चीतवियो काठां चढण ॥९॥

अर्थः— शंकर के दीवान (जवानसिंह) ने अपने तन मन के समान दिल चाह बाई को रखी थी । (यही कारण है कि) उसने भी अन्तिम समय में पति-प्रेम का स्मरण कर चिता पर चढ़ना निश्चित किया ।

दोहा

मन भावन तनमन मली, रली भूप रंग रेस ।
यल राखण कथ ऊजली, प्रजली झाळ प्रवेस ॥१०॥

अर्थः— महाराणा (जवानसिंह) के विनोद में तन मन से सनी रहने वाली मन भावन बाई भी संसार में अपनी पवित्र ख्याति रखने के लिये पति के साथ प्रज्वलित ज्वाला में प्रवेश कर भस्म हो गई ।

सोरठा

हीरां सांचे हेत, तौनै वरती भीमतण ।
सत करता सरबेत, दियौ साच हेकण दवस ॥११॥

अर्थः— हे हीरांबाई ! तुझे महाराणा (जवानसिंह) ने जिस प्रकार शुद्ध प्रेम से अपनाई थी, उसी प्रकार तूनेभी उसके साथ सती होकर अपनी सचाई का परिचय दिया ।

चतरी छांनी चीज, जाणी जिहुँइज जवांनसी ।
तांनी कीद पतीज, तैं अस मांनी तेहरी ॥१२॥

अर्थः— हे चतुरबाई ! महाराणा जवानसिंह ने तुझे अपने गुप्त धन के तुल्य समझा था। ठीक तूने भी उसी के अनुरूप ज्वालाओं में प्रवेशकर उसे (पति-प्रेमको) सच्चा सिद्ध करदिया ।

दोहा

ढोलां सद खारा ढमक, अक बक जग अवरेख ।
सुर मंडळ थायौ सुरख, सतियां आठ सुपेख ॥१३॥

(रचयिताः— चमनजी)

अर्थः— जब महाराणा के साथ आठों (दो रानियों एवं छः उप-पत्नियों) ने सहगमन किया, तब जोरों से बाजे बजने लगे, जिन्हें सुनकर सारा संसार चकित होगया और स्वर्ग-मंडल अधिक सुन्दर बनगया। अर्थात् सतियों के स्वर्ग पहुँचने से वहां की शोभा अधिक बढ़ गई ।

महाराणा सरदारसिंह*

[१२] गीत

महा प्रथीप जवान जातां प्रथमी भैचाक-मंडे ।
सादौ बंधू जको थडे छंडे जोख साज ॥
तेण वारां बूधवान अनेका जुबांना तंडे ।
राखणौ हमैं तो चूंडे भुजाडंडे राज ॥१॥
मेळे भड़ां जेण वारां दगारां धराकां मोड़े ।
सोक रां जंजीरां तोड़े अगारां सधींग ॥

*टिप्पणीः— यह बागोर के महाराज शिवदानसिंह का पुत्र था। वि. सं. १८९५ में महाराणा जवानसिंह का उत्तराधिकारी बना। इसने भी प्रसिद्ध तीर्थ 'गया' की यात्रा बड़ी धूमधाम से की। वि. सं. १८९८ में यह परलोकवासी हुआ।

गाजतां नगारां सादौ बैठाय चीतोड़ गादी ।
सांम धमो धगारां लगायौ दूलैसींग ॥२॥

बापा जवांनेस बीच हुईना जेहड़ी–बारां ।
मिलाय ऊबरां सारां सला हेक मंड ॥
रैत सोच मेट ज्वारां थावै उग्रभाग राणौ ।
डगंतौ गैणाग तोके चूंडे भुजाडंड ॥३॥

जावता जेसीग भूप भैचके ढूंढाड़ जेम ।
भूप जवांनेस जातां मेवाड़ भैनेर ॥
जैनेर नू रावळेस बैरीसाल थबे जूंही ।
अजा रै जोधार जूंही थंबे उदैनैर ॥४॥

पदमेस हीसरेस हंमां अमरेस पढा ।
उग्रभागी सलूंबरां रावतां अरोड़ ॥
दूल एतां मले राज थंबतां ऊजळौ दीठो ।
चूंडा तणौ सांमध्रमौ राखणौ चीतोड़ ॥५॥

(रचयिताः— अज्ञात)

अर्थः— पृथ्वी पति महाराणा जवानसिंह के स्वर्गवासी होने पर जब मेवाड़-भूमि पर (एक प्रकार से) अशांति अथवा झगड़ा खड़ा हुआ, तब राणा के भाई सरदारसिंह ने राज्य ऐश्वर्य लेने से मना कर दिया अर्थात् व्यर्थ की झंझट में पड़ना अच्छा नहीं समझा। बहुतसे बुद्धिमान पुरुष भी तब अनेक (नरेश्वर की नियुक्ति के विषय में) बातें उलझी हुई कर रहे थे। ऐसे (उलझन के) समय में राज्य का भार चुण्डा के वंशजों के बाहु-बल पर ही निर्भर रहा।

आसींद के रावत दूलहसिंह ने जब ऐसा देखा, तो तत्काल सब सामंतों को मिलाकर (अपने पक्षमें करके) दगा रखने वालों को दूर करदिया और विघ्न उपस्थित करने वाले अगुवों के साथ २ शोक की जंजीरों को तोड़ कर नक्कारे बजवाते हुए सरदारसिंह को चित्तौड़ की गद्दी पर बिठादिया। इस प्रकार दूलहसिंह ने अपना स्वामिधर्म प्रकट किया।

बापा से लेकर राणा जवानसिंह तक कभी भी ऐसी घटना नहीं घटी जैसी कि यह घटी थी; परन्तु चूण्डावंशज दूलहसिंह ने एक राय से सब उमरावों को मिलाकर जनता के शोक को दूर कर दिया और भाग्यशाली राणा (सरदारसिंह) को सिंहासन पर बिठलाकर (मानो) डग मगाते हुए आकाश को अपनी भुजाओं पर आश्रय दे दिया।

जिस प्रकार जयपुर नरेश जयसिंह (द्वितीय) के स्वर्गवासी होने पर ढुंढाहर प्रदेश (विद्रोह के कारण) भयभीत होगया था और उसे रावल बेरीसाल (सामोद वाले) ने बचाया; ठीक उसी प्रकार राणा जवानसिंह के स्वर्गवासी हो जाने पर (विद्रोह वश) भयभीत मेवाड़ प्रदेश को अर्जुनसिंह के पुत्र (दूलहसिंह) ने बचाया (और विरोधियों का दमन कर के राणा सरदारसिंह को सिंहासन पर बिठादिया)।

भाग्यशाली रावत पद्मसिंह (सलुंबर वाले), ईश्वरीसिंह (कुरावड़ वाले), हम्मीरसिंह (भदेसरवाले), अमरसिंह (भैंसरोड़ वाले) तथा दूलहसिंह (आसींद वाले) ने मिलकर राज्य-रक्षा की और चूण्डा के चित्तौड़-रक्षण-रूपी स्वामी-धर्म को निभाकर अपना यश (विरुद) उज्वल कर दिखाया।

महाराणा स्वरूपसिंह

[१३] गीत (छोटा साणोर)

अवसर जुग पाय वृषभ तन आहँड,
थकियो असम अणूंठ थर।

हिंदवापती सदा घर होतां,
धरम हुवो पग च्यार धर ॥१॥

तप सत दया सउच ओयण तरण,
कळ कुळण गहियो सकळंक।
भीमाहर आखर दा भणतां,
अकळंकी हलियो अकळंक ॥२॥

जीवण जगन दान नहँ जोतां,
साम्रथहीण थयो निज साज।
(जीने) चालंतो रचि तो चीतोड़ा,
पुन्य डगर गाढ़े पै गाज ॥३॥

सत त्रेता द्वापर समटंता,
रहियो कदम हेक अण रूप।
करां धमळ डाणां ते कीधो,
सुक्रत मग वहतो मारूप ॥४॥

(गीत सं० १३ से ४१ तक, रचयिताः—कवि राव बख्तावरसिंह)

अर्थः— हे हिन्दू-सूर्य ! समय के फेर से धर्म-वृषभ चारों पैरों से लड़-खड़ा ने लग गया था और इतना अशक्त हुआ कि वह उठ भी नहीं सकता था; परन्तु हमेशा से वह आपका आश्रित रहा है। यही कारण है कि, (आज) फिर से चार पैरों वाला हो गया है (आप धर्म के उद्धारक हैं)।

तप, सत, दया और पवित्रता ये धर्म-वृषभ के चार पैर हैं। समय के इस फेर से उनमें रोग आगया और कलियुग में कलंक-कीच में फस गये; परन्तु

हे महाराणा भीमसिंह के वंशज ! आपके 'दो'-'दो' (दान दो) कहते ही यह निष्कलंक (धर्म-वृषभ) कलंक-कीच से मुक्त होगया और फिर से चलने लग गया ।

हे चित्तौड़ेश्वर ! अपनी जिन्दगी में यज्ञ, दान का अभाव देख कर धर्म-वृषभ अशक्त हो गया था; परन्तु तूने पुण्य-मार्ग पर दृढ़ पैर जमाते हुए उसे चलता फिरता (स्वस्थ) कर दिया ।

सत युग, त्रेता एवं द्वापर युग की समाप्ति होने पर धर्म-वृषभ एक पैर का रह गया था; परन्तु हे महाराणा स्वरूपसिंह ! तूने अपने हाथों के सहारे उसे सुकृत-मार्ग पर चलने योग्य बना दिया ।

[१४] गीत (बड़ा साणोर)

सधा तेज पुंजा प्रबल अजक उर साह रां,
　　धींग पण जाहरां दरस धारा ।
नाहरां नखातर धरै पोगर नगां,
　　थाहरां चरत सारूप थारा ॥१॥

अग्गही हजम्मां रवद दध वारसी,
　　सुतण सरदारसी रचै सीधा ।
मदन बनराव गैंवर करण मारसी,
　　कैलपुर वारसी बखत कीधा ॥२॥

धनो दन प्रतापी अटळ यळ धूवता
　　जजळ कथ हूवता लखे जाथी ।
छूवता गिरँद मृघराज आगळ छलै,
　　हमाहर चूवता मदो हाथी ॥३॥

ओहि आपाण लागे गजब आहड़ा,
अजब अवसाण हिंदवाण आखै ।
सादुळां ठाण गज घड़ां बांधे समौ,
राण तो बन कवण डांण राखे ।।४।।

अर्थः—(हे राणा) तेरे पूर्वजों के प्रताप एवं पराक्रम से इन बादशाहों ने कभी चेन की सांस नहीं ली। (सचमुच) उनके खड्ग हमेशा नग्न दिखाई देते थे। आज आपके चरित्र भी वैसे ही हैं। (यही कारण है कि आज आपके आतंक से) निर्बल हाथी भी सबल होकर नखधारी सिंहों के मस्तक को अपनी सूंडों से छू रहे हैं (आक्रमण कर रहे हैं, दबोच रहे हैं)।

जो मेवाड़ी अश्वारोही सेना यवनों के लिये समुद्र की तरह तूफान पर आती रही है फिरभी हे सरदारसिंह के पुत्र ! तूने बादशाहों को (बिलकुल)सीधा कर डाला। हे केलपुर के स्वामी ! (सचमुच) तेरे ही बलसे हाथी सिंहों की मांदों में जा पहुँचे हैं।

शत्रुओं के अटल भू-भाग को कंपित करने वाले हे हमीर वंशज प्रतापी राणा ! तुझे धन्य है। तेरी ख्याति दीप्ति मान है, तूने ही मद बहाते हुए हाथियों के आगे ऊर्ध्व गिरि में रहने वाले सिंहों को भगाने जैसा कर दिया।

हे आहड़े नरेश ! सब भारतवासी कहते हैं कि, तुम्हारी शक्ति एवं युद्ध के) दाव पैंच दोनों आश्चर्यप्रद हैं। (देखिये)—आपने सिंहों की जगह पर गज-समूह को जा बांधा। हे राणा ! कहो तो ! सिवाय आपके कौन ऐसा समर्थ है, जो शेरों के सामने हाथियों को मत्त बनाये रखता ।

[१५] गीत (सुपंखरा)

आगां जेताई मेवाड़ाधीश अथागां थाघता आया,
सत्रां भाँज आभ रै लागता आया सार ।

आंट रा उधारा चठी पराई जागता आया,
सधाई बागता आया सीमंतां सँगार ॥१॥
सीमंता विनादी गल्लां आलमां जिहान सूझै,
छूजै वेद राहां भू द्वारका खूजे छाप।
बीह बंचां नाली सार चौड़ै साखोचार बूझै,
पूजै पूज धेणूं तिको हमीरां प्रताप ॥२॥
जळाबोल बोल बारै जवंनां खेलणां जेहा,
नरेसां फैलणां सिंध वारां नेर नेर।
हरीतो चेलणां साहां ठेलणा प्रसाद हूँथा,
फरां ईद झेलणा न झेलै पत्री फेर ॥३॥
मही दीठा बापा बंशी कळंक्यां केदार माया,
दाग दाया होबासां नबाबी भाया दल्ल।
जाया लल्ली ढ़ल्लीसां दरीज छत्रधारां जाया,
मेदपाट आया तके न थाया मुगल्ल ॥४॥
छूटा चक्र आंण रा अदीठ प्रळै काळ छैतां,
पैतीसां बांण रा न्हैतां पैगंबरां पीर।
कुळां जोग मदा नंद घराणैं राण रा कांधा,
अभे मूंछ ताणै हिन्दूथाण रा उमीर ॥५॥
सारूपा बडेरा ज्यूंही हाखरा अठंगा सुखे,
पांण जोड़ भाखरा द्रबा दै प्रथीपाळ।
जोखां रामचन्द्र गादी रतप्पौ लाखरा जुगा,
आहड़ा साख रा छत्री साख रा उजाळ ॥६॥

अर्थः— मेवाड़-स्वामी शुरू से ही अथाह को थाहने वाले, शत्रुओं को नष्ट करने वाले, शस्त्रों को उठा कर आकाश छूने वाले, परहित युद्ध छेड़ने वाले और श्रीमंतों के शृंगार कहे गये हैं।

श्रीमंत मेवाड़ स्वामियों की ख्याति संसार प्रसिद्ध है। ये वेद कथित मार्ग पर चलने वाले हैं। इनके चरण छूना, द्वारिका की यात्रा कर छाप लगवाने के समान है। यदि बही लेखको (नामावलि लिखने वालों), तोपों, बन्दूकों एवं शस्त्रों से इनका गोत्र-परिचय पूछा जाय, तो यही उत्तर मिलेगा कि, आज जो गौ पूजी जाती है, वह राणा हमीर के वंशजों का ही प्रताप है (गौओं की रक्षा इन्हीं राणाओं ने मुगलों से की है)।

(दुश्मन की ओर से) ललकारने पर एक मात्र मेवाड़ेश्वर ही ऐसे रहे हैं, जो आग के समान धधक कर यवनों से युद्ध लड़ते रहे और राज वंशों को सिंध के प्रत्येक नगरों में स्थापित करते रहे हैं। ये हारीत ऋषि के शिष्य हैं, इन्होंने ही बादशाहों को पदच्युत कर धकेल दिया हैं। ईद के मानने वालों (यवनों) को और उनके फरमानों (आदेशों) को लौटा देने वाले हैं।

संसार में दर्शन करने योग्य बापा के वंशज केदार तीर्थ के समान हैं। जो छत्रधारी राजा शाही सेना में रह कर अपने घोड़ों को दागते* रहे हैं, जो नवाब पद से खुश होते रहे और जो राजवंशज होते हुए भी शाहजादे बने फिरते रहे, वे मेवाड़ेश्वर के चरणों में आकर ही मुगल होते २ बचे।

प्रलय-काल के समान शाही-दुहाई के अदृश्य चक्र चलने पर पैंतीसों वंश के क्षत्रिय जो पेगम्बर और पीर बन गये थे, उन्हें राणा-वंश ने ही पुनः-कुलीन बनाया। इसी लिये आज हिन्दुस्तान के राजागण अपने को राजपूत कह कर मूछों पर ताव देते हैं।

---

*टिप्पणी—शाही-शासन का यह नियम था कि, जो घोड़े उनके अधिकार में होते थे, उन पर एक प्रकार का निशान दाग दिया जाता था।

हे महाराणा स्वरूपसिंह ! जिस प्रकार सब राजा गण तेरे पूर्वजों के समक्ष पुकार करते आये हैं उसी तरह आज भी सब हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं कि, हे पृथ्वी पति ! इन उठे हुए यवन-पर्वतों को दबा दीजिये (नष्ट कर दीजिये), और हे आहड़ा-राजवंशी ! क्षत्रिय जाति को उज्वल (पवित्र) बनाने वाले ! आप लाखों युगों तक इस भगवान रामचन्द्र की गादी पर प्रसन्नता पूर्वक सुशोभित रहें।

[१६] गीत (छोटा साणोर)

सुभ सेवन दाण प्रतिष्ठा सारो,
 बरतारो रचियो श्रुत बोध।
हर मण्डप आरो पत-हिन्दू,
 सब आयो थारो सीसोद ॥१॥
गुण्यां सलप बिप्रां मुख गायो,
 पायो श्रवण समझ निज पाण।
प्रथीनाथ मंदर परणायो,
 बिसुधा पर छायो वाखाण ॥२॥
भांमी सकल जगत भेवल रो,
 बेवल रो जाहर श्रुत बोल।
दूजा जगा हरख देवल रो,
 महपतियां केवल री मोल ॥३॥
सादल पाट बैठ क्षतिय सातां,
 आजोलग जाथा आरूप।
राखी श्री गिरधर प्रधरावां,
 सतजुग री बातां सारूप ॥४॥

अर्थः— हे हिंदू सूर्य सिशोदिया राणा ! तूने जो मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाते समय मंडप बनवाया था, वह प्रभु-सेवा, दान एवं शास्त्र-विधि से चलने के कारण शिव-मंडप के समान बन गया।

हे पृथ्वी पति ! तूने वैसा ही नियम पालन किया जैसा कि शिल्पी एवं ब्राह्मणों ने बताया और मंदिर की प्रतिष्ठा की, जिससे तू संसार में प्रशंसा का पात्र बन गया।

(यज्ञ के विषय) में जितना करने को कहा गया तूने उससे दूना कार्य किया जिससे संसार में महायज्ञ की भ्रांति हो गई। हे महाराणा ! मानो आप दूसरे राणा जगतसिंह हैं। आपके द्वारा निर्मित देवालयों के उत्सव की तुलना राजाओं द्वारा की गई—कैवल्य उपासना से की गई है।

हे महाराणा स्वरूपसिंह ! जब से तू महाराणा सरदारसिंह के तख्त पर बैठा है, तब से आज तक ख्याति प्राप्त करता ही रहा है। देवालय बनवाये एवं गिरिधर (भगवान) की प्रतिमा प्रतिष्ठित की, जिससे तूने सतयुग की बात कायम रखी (सतयुग के राजा जैसा करते थे, वैसा ही तूने किया)।

[१७] गीत (बड़ा साणोर)

सझै सीसवद कवेसां कुरद करणै सरद,
लहर रघुवीर रा विरद लोकी।
दरध किन्नर अधप कनकपुर दोवळा,
चोवळा फरै नत गरद चोकी ॥१॥

छोळ दत सदावत भुज उरस छावता,
आ भता दीयण री दहल आखै।
सबळ कूबेर घर अकुटचल साबता,
रात दन जाबता भला राखे ॥२॥

भीम हर कहर सारूप रीभां भळक,
थहर गुणयां अघट भोख थावै।
भंडारा जखेश्वर गहर कंचन भुरज,
पहर पहरा जके अजक पावै ॥३॥

छत्रधर हमाव्र छांह दत छोज का,
दुरस घण मोज का बयण दीधा।
फकर व्है धनेसर लंकपत फौजका,
कलजितै ओजका धरण कीधा ॥४॥

अर्थः— हे सिशोदिया राणा! तूने कवियों को वश में करने के लिये .मचन्द्र के यश का पालन किया और उसी तरह उमंग में आकर हाथियों पर बिठा दिया। तेरी इस उदारता को देख कर दुखित कुबेर एवं लंका-पति अपनी अपनी राज-धानी के चारों ओर चौकन्ने होकर पहरा देते हैं। (उन्हें अपने कोश के लुट जाने की शंका है)।

हे सरदारसिंह के पुत्र! तेरे हाथ और हृदय में उदारता की इच्छा पैदा होने पर कुबेर और त्रिकुट पर्वत को भय लगता है कि, कही दान में (हमारा खजाना) न दे देवें। इसीलिये वे अपने स्थानों की रक्षा पूर्ण रुपसे करते हैं।

हे भीम सिंह के वंशज महाराणा स्वरुपसिंह! तेरी उदारता के कारण गुणवानों को पुश्त दरपुश्त तक के लिये जागीरें मिल जाती हैं, जिससे उनके यहां उत्सव मनाये जाते हैं। तेरी ऐसी दानवीरता देख कर कुबेर को अपने कोश की और लंकाधीश को अपने स्वर्ण-दुर्ग की चिंता बनी रहती है कि, कही दान में न देदें। (इस लिये) वे आठों प्रहर रक्षा में लगे रहते हैं, उन्हें चैन नहीं है।

हे छत्रपति राणा! दान की उमंग में तेरे उठे हुए हाथ हुमाऊ पक्षी* के पंखों के समान हैं (जिनकी छाया पड़ने पर राजा बन जाता है)। उदारता के कारण

---

*टिप्पणी:—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि, यह आकाश में ही रहता है। जब किसी मनुष्य पर इसके परों की छाया पड़ जाती है, तब वह मनुष्य राजा बन जाता है।

तू (कवियों को जागीर देने का) जो वचन देता है, उससे धनाधिप एवं ससैन्य लंकापति चिंता मग्न हो रात दिन अपने स्थानों की रक्षा के लिये जागते रहते हैं।

महाराणा शंभूसिंह

[१८] दोहा

तण सरूप शंभू तने, बिसुधा रा यण बेर।
कुण पूगे हिन्दू कलम, दत-पथ घोड़ा देर॥

गीत

मुसकल अवगाह बड़ा सीमंतां, ढ़ाव चोट अणथाह ढंग।
दत रे राह ऊपरां दपटे, नागद्रहा उडणा निहंग॥१॥
फेटां खुरां मठां सर फोड़ां, अहियो घण दोड़ा अढ़णार।
घाले तूझ उछट बट घोड़ा, चित्तोड़ा झोखा चढ़णार॥२॥
चावक घात मँडे कुण चाके, छत्रपतियांइ थाके छोखार।
करतब पैंड जलाली कारवे, तूं हांखे शंभू तोखार॥३॥
खित धन लखां कोड़ रा खाटी, लख घाटी ओघट दे लूळ।
(असी) रीझ डगर पाटी पर राणा, बै तूं ही धाठी बांडूळ॥४॥
सुतण सरूप धोखिया सायर, तो भी निकूं रोकिया तज्ज।
श्रवणे मगां तोकिया बागां, भूरा थें झोखिया भड़ज्ज॥५॥
बाजी भीम जगड़ री बेड़े, जस हाखा हेड़े नत जाम।
छोळां पंथ गजब रेइ छेड़े, हिन्दूपत खेड़े हीमास॥६॥

सोरठा

जे जाडी जोड़ाह, मारग-दत दोड़ा महीं।
घाले कुण घोड़ाह, शंभू चित्तोड़ा सँहे॥

अर्थः—(दोहा) हे महाराणा स्वरूपसिंह के पुत्र (शंभुसिंह)! आज न तो ऐसा कोई हिंदू ही है न कोई मुसलमान, जो दान-मार्ग पर घोड़ा दौड़ा कर तुम्हारी बराबरी करता।

अर्थः—(गीत) हे नागद्रहेश्वर (मेवाड़-राणा)! सीमा पर रहने वाले जो बड़े राजा हैं और जिन्हें कुचलना सरल नहीं है, उन पर भी आप अश्व-खुर के आघात पहुँचाते हैं और आपने उड़ने वाले घोड़े (शीघ्रगामीअश्व) को दान-पथ पर दौड़ाते रहते हैं।

हे अश्वारोही चित्तौड़-अधिपति! आप मदमत्त होकर भयंकर धावा करने वाले हैं (खूब दौड़ दौड़ने वाले हैं)। आप अपने घोड़े के खुरों की टक्कर से कृपणों के सिर फोड़ते हुए उमंग के रास्ते पर घोड़े को बढ़ाते रहते हैं।

हे शंभुसिंह! समस्त उत्साही राजा भी थक जाते हैं। आपके सिवाय ऐसा कौन है, जो चाबुक मार कर अपने घोड़े को इस दान वीरता के कुंडल (घेरे) में दौड़ायें? (वास्तव में) एक आप ही ऐसे हो, जो अपने (उदारता के) कर्तव्य-मार्ग पर तेजी से घोड़े को बढ़ा रहे हो!

हे महाराणा! पृथ्वी पर लाखों, करोड़ों की सम्पत्ति संग्रह करने वाले हैं, परन्तु वे (दानरूपी) घाटी को अगम्य समझ कर नत स्कंध हो जाते हैं। (वास्तव में) एक आप ही ऐसे हो, जो उदारता की पथ-लीक पर उछल कूद करते हुए घोड़े को बढ़ाये जाते हो।

हे महाराणा स्वरूपसिंह के युवक-पुत्र! रत्न-प्राप्ति के लिये जिन्होंने समुद्र तट छान डाले हैं परन्तु उनके हाथों से भी नकद मुद्रायें नहीं छूट सकीं। (सचमुच) एकमात्र आप ही ऐसे हैं, जो दान-पथ पर रास उठा कर घोड़ा दौड़ा रहे हो।

हे हिन्दू-पति महाराणा! आप उदार राणा भीमसिंह और राणा जगतसिंह से बाजी लगाते हो। आप अपने यश का शोर कराते हुए और उत्साह के मार्ग पर अनोखे ढंग से घोड़े को छेड़ते हुए दौड़ा रहे हो।

अर्थः—(सोरठा) कवि कहता है कि, दान-मार्ग पर धावा करने वाले बड़े २ दान-वीरों में से ऐसा कौन है, जो चित्तौड़ेश्वर शंभुसिंह के साथ दान-मार्ग पर बराबरी से घोड़ा दौड़ा सके ?

[१६] गीत (छोटा साणोर)

पाहाड़ां बन त्रिकट रह्यो अण पँजियो,
जाड़ां थड़ सजियो केइ जग्ग ।
भड़ियो जिकां तिकांई भँजियो,
ईक थोह सजियो अगग्ग ॥१॥

चाटक चद्‌र सींघ चरायो,
छल कर जायो जाण छज ।
दे अरजी भाळत्र दोड़ायो,
शभू आयो हत्रद सज ॥२॥

घेसाहर घेरै चुप घलियो,
सुभटां मलियो हुकम सथ ।
अतरै तो थाहर अल बलियो,
चलबलियो लै बोक चत ॥३॥

चुसमां रूप पूंचो चाटकतो,
बाठकतो घल मूंछ बळ ।
आयो छुप हाटक आटकतो,
काटकतो जत्र दूत कळ ॥४॥

लखियो किता किता नहँ लखियो,
बाडव धखियो क्रोध बण ।

झाटक खज चाटक दे झँखियो,
तकियो दाव सरूप तरण ॥५॥
ठाहर सर टीली री ठाळक,
संचा ढ़ाळक रफल सर।
चाढ़ खँम्हैं झोकी कळ चालक,
काळक बाळी मूंठ कर ॥६॥
ओह ओह करतो अड़बड़ियो,
झड़ियो फूंके सास झट।
पटिया जिम बाकर खुल पड़ियो,
नाहर गुड़ियो जेम नट ॥७॥
घण आखेट घले केइ घातां,
निज ख्यातां केइ सुणे नत।
या रहसी अवचळ अखियातां,
प्रभुता हाथां हिंद्पत ॥८॥

अर्थः— विकट पहाड़ी बन में, एक अदम्य सिंह रहता था। वह शिकारी-समूह के घेरा डालने पर जो (शिकारी) आगे बढ़ता था, उसे पछाड़ दिया करता था और गर्जना कर कन्दरा में चला जाता था।

उस सिंह को 'चाटके'❀ पर बकरे बांध कर शिकारियों ने जमाया, फिर भी वह छल को समझ गया। ऐसी दशा में (एक दिन) शिकारियों ने पक्की खोज कर महाराणा शंभूसिंह को सूचना दी। महाराणा हाथी पर बैठ कर वहां पहुँचे।

❀टिप्पणीः— शिकारी सिंह को मारने के लिये बकरे या भैंसे बांध कर जिस स्थान पर चाट लगा देते हैं, उसे 'चाटका' कहते हैं।

सैनिकों और सामंतों को आज्ञा मिलते ही चुपके से सिंह को घेर लिया। हृष्ट पुष्ट सिंह भी बकरे की इच्छा करता हुआ उठा।

सिंह शिकारियों की ओर नजर डालता, अपने पंजों को चलाता, शरीर को मोड़ता, मूंछों पर ताव देता, छिपता, आहट पर रुकता और यम-दूत के समान दाँत पीसता हुआ बढ़ा।

आते हुए सिंह को कइयों ने देखा और कइयों ने नहीं। वह सिंह वडवाग्नि के समान क्रोध से धधक रहा था। उसने बंधे हुए बकरे को मुंह में पकड़ कर झंझेड़ दिया और पंजों को बजाते हुए महाराणा की ओर देखने लगा। उसी समय महाराणा स्वरूपसिंह के पुत्र (शंभुसिंह) ने गोली चलाने का अच्छा अवसर समझा।

जो तुरक (बन्दूक) यमराज की मुष्टिका के समान टक्कर देने वाली थी और जिसमें सांचे में ढली हुई गोली पड़ी थी, उसे महाराणा ने छाती से लगा कर सिंह के ठीक मस्तक के बीच लक्ष्य कर दाग दी।

गोली के लगते ही सिंह गरजता हुआ लड़-खड़ाने लगा। उसकी सांसे शरीर से निकल गई। सिंह के मुख से बकरा इस प्रकार छूट गया मानो गले से पटिया खुल कर गिर गया हो। तब वह नट के समान कुलांछे भरता हुआ (उलटे मुँह) पृथ्वी पर गिर पड़ा।

कवि कहता है कि, महाराणा हिंदुओं के स्वामी (शंभुसिंह), इस प्रकार शिकार खेलते हुए कई शेरों पर वार करते हैं (मार डालते हैं)। आपके हाथों में ईश्वरी शक्ति है। इनकी ख्याति अक्षुण्ण है। अपनी ख्याति महाराणा हमेशा सुनते रहते हैं।

[२०] दोहा

सींहण भाखे सींह ने, चढयो संभु बँध चाळ।
नींदाळ जागो नहीं, बागो सुण त्रंबाळ ॥१॥

सेदानां घण संभु रा, रण वाळा घण राग ।
बागे थें सर बाघरा, जागो बालम जाग ॥२॥

दुनांळां नाळां दुभ्भल, आरण झड़ती आग ।
साज यसै ऊभौ सँभू, जाग नौहत्था जाग ॥३॥

कै-कै सोनहरी कटर, गया ठकाणै लाग ।
संभु हमें ते पर सज्यो, जागो बब्बर जाग ॥४॥

ऊठो-ऊठ उळीदणां, मैं गल छांडो मोह ।
हींदू पत संभू हखी, थैं बनपत री थोह ॥५॥

गीत (सावझड़ो)

सुणै सींहणी जगावो साद कानां सरब,
ऊठियो उळिंद अतरेक बाणो अरब ।
गुणै सींहण हुतां बडा बोलां गरब,
प्रथीपत हूँत भाराथ वाळो परब ॥१॥

ततेई सँभळ फिर त्रंबक आहट पर,
झाळ चुसमां झड़त पूंछ दै झाट पर ।
घुँणण घण नाद आयो जजर घाट पर,
अधपति संभु जाडा भड़ां आठ पर ॥२॥

तुफक झंबूर फंदर झँखे तेहरी,
छड़ां रण गुघर करनाल झँख छेहरी ।
मदजरां घड़ां चाळां झँखे मेह री,
कलोधर झँख्यो सारूप-तण केहरी ॥३॥

गगग दुछरेल बाड़व फुलँग बणगियो,
लाग धक अताळी चकर कावो लियो ।
दुनाळां अताळी वार भूरे दियो,
कोडंडी धनंजय सरा-पिंजर कियो ॥४॥

घेर रे दाव अणचूक चोटक घतो,
हगामें कळस जिझयो कियो नोहथो ।
भयंकर पाड़ियो गंज सोव्रण भतो,
मेवाड़े-नाथ श्रीहाथ डालामथो ॥५॥

तोल आखेट कमलोद तट ताल रै,
भेजणी चग करै तुवा चँद्र भाल रै ।
चढ़ै रथ बघी आयो तुरँग चाल रै,
करण-हर उदैगिर रूप करणाळ रै ॥६॥

अर्थः—(दोहा) सिंहनी ने सिंह को जगा कर कहा,—हे निद्रित स्वामी ! महाराणा शंभुसिंह, साथियों को पंक्ति बद्ध कर तुम पर चढ़ आये हैं और तासे आदि बज रहे हैं। फिर भी आप नहीं जाग रहे हो ? ॥१॥

हे पति (सिंह) ! महाराणा शंभुसिंह के युद्ध-समय में बजने वाले नक्कारे सिंधुराग में बज रहे हैं। अब तो आपको जागना चाहिये। ॥२॥

जिस दुनाली बंदूक से अहरन की तरह आग बरसती है एवं जिसके वार असह्य है, उसे लिये हुए महाराणा शंभुसिंह आडटे हैं। हे नौहत्थे ! अब तुम्हें सावधान हो जाना चाहिये ॥३॥

जिसने कई सिंह को मार कर स्वर्ग पहुँचा दिया है, वही महाराणा शंभुसिंह अब तुम पर चढ़ आये हैं। अतः हे बबर शेर ! अब तुम्हारा जग जाना ही अच्छा है ॥४॥

हे वन-पति (सिंह) ! अब तुम जमुहाना एवं मेरे गले में हाथ डाल कर सोते रहने का मोह छोड़ दो; क्योंकि, तुम्हारी कन्दरा हिन्दू-पति महाराणा ने घेर ली है ॥५॥

अर्थः—(गीत) सिंहनी के वचन सुन कर जमुहाई लेता हुआ सिंह उठा और इतने में अरबी (तासे आदि) बाजे बजने लगे। सिंह ने सदर्प सिंहनी से कहा— अरी सिंहनी ! आज इस भूपति (महाराणा) के साथ मेरी लड़ाई महाभारत युद्ध के समान होगी।

जब तासे आदि बाजे लगातार बजने लगे, तब सिंह आँखों से आग बरसाता हुआ, पूंछ फटकारता हुआ तथा बड़ी जोर से गरजता हुआ यम-स्वरूप बन गया और महाराणा एवं उनके बड़े २ सामंतों की आहट पाकर उसी ओर बढ़ा।

सिंह ने देखा कि, तीन पंक्तियों में सजी हुई बन्दूकें, तोपें घुंघरू लगे हुए रण-शेल (रण-कंकण वाद्य विशेष), करनालें (बड़ी २ बुगलें) और घन-घटा तुल्य गज-पंक्ति है। बाद में वह सुनहरी सिंह महाराणा स्वरूपसिंह के सतेज पुत्र की ओर देखने लगा।

महाराणा को देखते ही सिंह क्रोध में आकर गरजने लगा और वड़वाग्नि की लपटों की तरह बनकर बल प्रदर्शन करता हुआ शीघ्रता पूर्वक (इधर-उधर) चक्कर काटने लगा। उस समय युवक महाराणा ने इस तरह दुनाली बंदूक के वार किये मानो अर्जुन ने अपने चाप द्वारा शर-पिंजर बना दिया हो।

मेवाड-राणा ने दाव पेंच से घेरा डाल कर अचूक वार करते हुए नौहत्थे सिंह को मृगयोत्सव में (गोलियों के प्रहार से झंजिया* का सछिद्र घट बना

---

* किसी त्यौहार पर एक मिट्टी के कलश में अनेक छेद कर भीतर दीपक रखा जाता है। बिहारी ने भी इसी शब्द के प्रयोग से अनूठा कवित्व प्रदर्शन किया है:—

जाल—रध्र मग व्है कढ़त, तियतन दीपति पुंज।
झंजिया के सो घट भयो, दिन ही में वन कुंज॥

दिया। महाराणा के हाथों से मारा गया वह विशाल मस्तक वाला भयानक सिंह पृथ्वी पर पड़ा हुआ ऐसा दिखाई दिया मानो स्वर्ण का ढेर लगा हो।

उदयसागर तालाब के किनारे कमलोद नाम पहाड़ है, वहाँ आखेट के लिये सज-धज कर महाराणा ने सिंह को मार डाला; परन्तु गोलियों के अधिक लगने से त्वचा इतनी छिद्रमय हो गई कि, वह बिछाने योग्य नहीं रही। इस लिये महाराणा ने चिक बनवाने के लिये शिव को अर्पित करदी और महाराणा कर्ण के वंशज सूर्य-रथ के समान बग्घी में बैठ कर सूर्य-समान ही तेज फैलाता हुआ उदयपुर लौट आया।

[२१] गीत (बड़ा साणोर)

थया पाहाड़ां बिकट विच कोट बीड़ा थँडळ,
साल घर अखंडळ थया सारै।
गवरधन विलासै झँडल बागवा सूं,
वण्यो ब्रजमँडल सारूप वारै ॥१॥

हामियो तठै बनराव हिक हलरह्यो,
ठल रह्यो ग्याळ रछपाल ठावा।
साध रै अघासुर रूप जिम सल रह्यो,
घल रह्यो खाद रै करण घावां ॥२॥

बीर वर सुणै मारूप रै वेणुका,
अपट ऊफेणुका क्रोध ऊगो।
दमँगळां हजंमा रफल झड़ देणुका,
पाज बँव धेणुका बेल पूगो ॥३॥

उठायो अराबां झड़ा हावां अड़ा,
हड़फियो खड़हड़ा डढ़ां हाणो।

मोसरां तांण कल लडा गोछर मही,
रुप्यो दुरदां घड़ा, जुड़ा राणो ॥४॥

सँम्हों भल पटैची भमर हाथल् समर,
दुभल भल हेम तुल धमर दीधी।

डाव चढ़ भाँजियो बड़ा भोखां डमर,
केलपुर सुरभियां अमर कीधी ॥५॥

नो ह काल् रा जीप खेटा नडर,
उछरँगा टाल् रा गवा आडा।

भाल रा लै आयो संभु जाहर भुजां,
गऊ प्रतपाल् रा बिरद गाढ़ा ॥६॥

दोहा

महाला मोताहला, ढालण हेखो ढाण।
व् ढालर सँभु आवियो, प्रबल दुनालां पाण ॥१॥

अर्थ:—(गीत महाराणा स्वरूपसिंह के समय उदयपुर के निकट ही 'गोवर्धनविलास'* नामक स्थान के पास विकट पहाड़ों में एक बीड़ (तृणभूमि) कायम हुआ। उसके चारों ओर पत्थरों की दीवार बनवाई गई। गोवर्धन-विलास में सुदृढ़ राजप्रासाद बनवाये गये, जिन पर पताकायें फहराने से वह स्थान ब्रज-मंडल के समान बन गया।

*टिप्पणी:—यह स्थान पहले 'मानजी के कुण्ड'—के नाम से प्रसिद्ध था। गोभक्त होने से महाराणा ने वहां गोशाला बनवा कर उस स्थान का नाम गोवर्धन-विलास रखा।

(कुछ दिनों बाद) उसी (तृणभूमि) में एक सिंह रहने लगा जो अच्छे (होशियार) ग्वालों को भी डरा देता था, वहीं पहाड़ियों में रहने वाले ऋषि को भी अघासुर के समान खटकता था और हमेशा पशुओं को मार कर अपना आहार बना लेता था।

जब यह सूचना महाराणा स्वरूपसिंह के पुत्र (शंभुसिंह) को मिली, तब वह, सिंह पर विशेष क्रुद्ध हो और तुपकों के अनवरत वार करने वाली सेना सजा कर गोरक्षा के लिये वहां जा पहुँचे।

अरबी बाजे बजवा कर जब महाराणा ने शौर-गुल करवाते हुए सिंह को घेर लिया और जगा दिया, तब वह अपनी दाढ़ें कटकटाता हुआ झपटा। महाराणा भी सिंह को अपनी ओर आता देख कर मूछों पर ताव देने लगे और तृणभूमि पर ही अपनी दुनाली बन्दूक को पुचकार कर गज-समूह को पंक्ति बद्ध कर सिंह के सामने आगये।

एक ओर से काली २ लकीरों वाला सुनहरी सिंह सामना करके पंजे मारता हुआ बढ़ा और दूसरी ओर से केलपुर अधिपति (महाराणा) ने स्वर्ण-मूल्य को आंकने वाली बन्दूक के, जिसके वार असह्य थे, वार पर वार कर (सब ओर) धूआँ फैला दिया और अवसर से दाव में आने पर सिंह को मार कर गौओं को प्राण-दान दिया।

महाराणा ने काल-रूपी नौ हत्थे सिंह पर विजय प्राप्त कर ऊँचे स्वर से सिंधु-राग बजवाया और अपनी राजधानी लौट आये। इस प्रकार महाराणा ने अपने बाहु-बल से गौ रक्षा का यश प्राप्त किया।

अर्थः—(दोहा) जो सिंह, एक ही छलांग में मतवाले हाथियों के मस्तक पर कर-प्रहार कर मोतियों का ढेर लगा देता था, उसे बलवान महाराणा शंभुसिंह अपनी तुपक से धराशायी कर राजधानी लौट आये।

[२२] गीत

कीधो पांव्हणो बेदले राणे राव ने हगामो कीधो,
बाग कोठी बणा लीधा लधणी रै बूंत।

भाल्वां उसामें कही आणँद री घड़ी भींदा,
दीधां थोह भालियो सोन्हेरी जत्र दूत ॥१॥
सुणै तठै बिलालो उमाहे घालो हेके साथां,
हालो हालो सेनापातां श्रीमुखे हवान।
झुंडां गजा सभ्कां बीर हेम तोल भुजा झालो,
जलालो आखेट आयो बीजोई जवान ॥२॥
लगा हाखो घेरा लीधो लंगरा संगरा लोगो,
बणा जोगा जोगो सो करोलां वाळै बांण।
थौहळै बलाका हूँथ ऊभो दाव घाव घोघो,
भूगोल रा तीरंदांजा छोगो हिंदू भाण ॥३॥
जागियो जिसा में सींह जाणै घोर जाल् वाळी,
सोभै मूलां माथे कलां चाल वाळी साथ।
फंक्यो गोला रुप व्है न चूको डांण फाल् वाली,
नचूकां दुनाल् वाली भूगे प्रथीनाथ ॥४॥
दीधो डोटो हेरव जाणे तासीरो झड़ाँय दीधो,
तोपड़ो छुड़ाय दीधो रखेलै तड़ाँछ।
दादहुँ बँदूक हाथां धक्के ले उड़ाय दीधो,
गिरंदां गुड़ाय दीधो तेवड़ी गुलाँछ॥५॥
असै रुप खेले खेल बडारागां आडम्बरां,
जाजुली खंभ रां भड़ां बींटियो जडाव।
पाधारियो संभू फेर संभरा पतीरै पाछो,
चम्मरा ढुलंतां मेघाडंमरां चढ़ाव ॥६॥

अर्थ:—(एक समय) बेदला के स्वामी बख्तसिंह ने विलायत के नमूने की एक कोठी बनवा कर बाग बगीचे लगवाये, जिसके उत्सव में महाराणा शंभुसिंह आमन्त्रित हुए। खुशी का समय था। खोज करने वालों ने सूचना दी कि, यहां के शिकारगाह की कंदरा में यम-दूत के समान एक सिंह देखा गया है।

सूचना पा कर महाराणा उत्साहित हुए और आदेश दिया कि, "हे सेनापतियों ! आखेट के लिये तय्यार हो जाओ।" स्वयं गजसमूह को सजवा कर स्वर्ण-मूल्य को आँकने वाली तुपक कंधे पर उठा कर रवाना हुए, उस समय महाराणा शंभूसिंह, मानो दूसरे महाराणा जवानसिंह हों ऐसे लगते थे।

साथियों ने पंक्तिबद्ध होकर सिंह को घेर लिया और शोर-गुल मचाने लगे। अवसर से करोल पक्षी* भी उनका साथ देने लगे। इधर धनुर्धारियों के सिरमौर हिंदू-सूर्य महाराणा भी सिंह को भांपते हुए बन्दूक का दांव देने के लिये खड़े हुए थे।

उस भयानक घेरे को देख कर सिंह जाग उठा और बन्दूक चलाने को तत्पर बैठे हुए महाराणा को देख तोप के गोले की तरह बेरोक झपटा, तत्काल युवक महाराणा ने अपनी दुनाली का अचूक वार किया।

सिंह पर गोली का आघात इस प्रकार हुआ मानो किसी खिलाड़ी ने गेंद पर डंडे का वार किया हो। बन्दूक के लगातार वार आतिशबाजी की तरह दीखने लगे। बन्दूकों की आवाज इतनी जोर से हो रही थी, जैसे तोपें छोड़ी जा रही हों। महाराणा ने उचित ही किया, जो गो भक्षक सिंह को अपने आगे से न जाने दिया। उस समय उन आघातों से पहाड़ पर से तीन २ कुलाचें खाता हुआ वह सिंह जमीन पर आ गिरा।

*टिप्पणी:—यह पक्षी प्रायः सिंह के आसपास ही मिलता है। सिंह को देख कर विचित्र ढंग से चहचहाना, इसका स्वभाव है। सिंह के अन्वेषण में शिकारियों को इस पक्षी से बहुत सहयोग मिलता है।

इस प्रकार आखेट कर ठाटबाट के साथ सिंधुराग गवाते हुए, गौरव-शाली सतेज सामंतों के बीच अपने सिर पर चमर उड़वाते हुए एवं मेघाडंबर (छोटा छत्र) धारण किये महाराणा चौहान, वीर बख्तसिंह के यहां लौट आये।

[२३] गीत (बड़ा साणोर)

अबै ईढ़ दीजै किसा अवन अवनीस री,
पोहो सकल दीसरी ऊच पाणो।
हिये बखसीस री भोख बेळां हुलम,
रजै जलधीस री तरँग राणो ॥१॥

सुतण मारूप रो आप अवसाण रै,
थरू हिक ढाण रै सहज थंभू।
डाक सुण कायवां बधै चत डांण रै,
समँद ऊफाण रै राण संभू ॥२॥

भालकी आखरां निसै घण भाव री,
दिसों दिस धावरी उलह दीजो।
मन चढै चाव री पहर छोळां महीं,
वेल दरियाव री भीम बीजो ॥३॥

सधा सरभर नँभै अवधपत साख री,
की गणत लाख री भुजां कीधू।
बधै दल छाकरी उमँग कोड़ां दरव,
हेल रतनाक री मुकट-हींदू ॥४॥

अर्थ—(दान वीर) महाराणा शंभुसिंह से किस राजा की समता करें ? क्यों कि आठों पहर इनके हाथ दान देने को तुले हुए हैं और जब प्रसन्न होकर दान देते हैं, तब उत्साह (उमंग) समुद्र की तरंगों के समान उठता रहता है।

महाराणा स्वरूपसिंह का पुत्र शंभुसिंह, उदारता में स्वयं सजग रहता है। दान-मार्ग पर ही चलना केवल एक इसीका काम है। (सचमुच) जब लगातार कविता सुनते २ चित्त मस्त हो जाता है, तब यह दान देने में समुद्र की तरह तूफ़ान पर आजाता है।

याचनार्थ इधर उधर भटकने के जो लेख कवियों के भाल में विधाता ने लिख दिये हैं, उन्हें महाराणा प्रेम पूर्वक उलट देते हैं (कवियों को इधर उधर नहीं भटकना पड़ता है)। शंभुसिंह, मानों दूसरे ही राणा भीम हैं। जब इनके हृदय में उदारता की उमंग उठती है, तब समुद्र के समान (रत्नादि) देने के लिये सहायक बन जाते हैं।

हिंदुओं के मुकुट रूपी महाराणा के समय में, भगवान रामचन्द्र के वंशजों की तरह ही (सबों का) समान रूपसे निर्वाह (पोषण) होता रहता है। महाराणा के आगे लाखों के दान की कोई बात ही नहीं (इतना दान तो सहज ही कर देते हैं); किंतु जब यह उत्साह से भर जाते हैं, तब हृदय में समुद्र को तरह लहरें उठती हैं।

[२४] गीत (सावझड़ो)

सझे सोहड़ां सुरँग रँग गरक सरसावणो,
आभ झुख लूमतां मेघ अघियामणो।
भँवर अलबेलियो पनो मनभावणो,
पृथीपत हुवो झालानयर पांव्हणो ॥१॥

धमळ मंगल वधत बँटत वाधाइयां।
घुमर लग ताहिफां घुर त्रंबक घाइयां।

सपतरा सुरां खुल पात सहनाइयां,
छत्रधर मचल रहियो हुलस छाइयां ॥२॥

झळाहळ कियां पत्रसाख अतरां झलत,
छटा धर जवाहर जोत भूषण छलत।

खुभै खूबी नयण तेज रसमी खुलत,
झलूसी मदन रो लियां राणो झलत ॥३॥

उझल्लां झला पोरस जलह ऊपरो,
जवानी दना प्रभता भरण जूप रो,।

भायगां हुथां झांखी दियण भूप रो,
रूपरो प्रद्य् मण नंद सारूप रो ॥४॥

तुलत उतमाम दरगाह हम तम्मरां,
खुलत मुख बयण आलम खमा–खम्मरां।

चत्रगढ़ नाथ संभू ढुळत चम्मरां,
ओपियो डमर सुरराज आडम्बरां ॥५॥

बूठतो रोकड़ां झड़ां लखपत बियो,
लाह चत्रमास रो तीज ओछव लियो।

दनदुलह पधारण पहल होकम दियो,
(ज्युंइ) कर कृपा सासरो परम पावन कियो ॥६॥

अर्थः—जब बादल झूम (लूम) रहे थे और घुमड़ रहे थे, तब सजे हुए मन को भाने वाले महाराणा अच्छी वस्त्रभूषा धारण कर सामंतों सहित, राज-राणा फतहसिंह के यहां देलवाड़ा में महमान बन कर आये।

महाराणा के आने पर मंगल-गान के साथ बधाई (मांगलिक वस्तुयें) बाँटी जाने लगी। मृदंग-ध्वनि के साथ २ वारांगनायें नृत्य करने लगी। सप्त स्वरों में शहनाइयां बजने लगी। उत्सव के इस प्रकार मनाये जाने पर महाराणा मतवाले के समान दिखाई देने लगे (हर्ष से फूले न समाते थे)।

महाराणा की वस्त्रभूषा इत्र का सौरभ फैलाती हुई चमक रही थी। जवाहर और भूषणों की कांति चारों ओर जगमगा रही थी। महाराणा का तेज सूर्य के समान शोभा पा रहा था और स्वयं महाराणा कामदेव के समान छटा फैलाते हुए झूम रहे थे।

महाराणा का पुरुषार्थ और नूर (तेज) छलक रहा था। जवानी के साथ ही प्रभुत्व भी पूरा था। महाराणा के दर्शन वे ही करते थे, जो भाग्यशाली थे। (सचमुच) महाराणा स्वरूपसिंह के पुत्र शंभुसिंह साक्षात् प्रद्युम्न के रूप में ही बने हुए थे।

सभा में यथा स्थान बिठाये जाने आदि का शोर-गुल हो रहा था। जनता 'खमा-खमा'* (धन्य-धन्य) बोल रही थी। चित्तौड़ के स्वामी शंभुसिंह पर चमर उड़ाये जा रहे थे। तब महाराणा का ठाटबाट इन्द्र के समान दिखाई देता था।

हमेशा दुलहा बने रहने वाले महाराणा शंभुसिंह ने, जो मानो दूसरे ही राणा लाखा थे, मुद्रायें बरसाते हुए वर्षा में तीज त्यौहार पर इस प्रकार आनंद

*टिप्पणी—वास्तव में 'क्षमा' शब्द का बिगड़ा हुआ रूप ही 'खमा' है और जिसका अर्थ भी मूल रूप से होता है; परन्तु राज घरानों में अर्थ-परिवर्तन होते २ 'खमा' शब्द 'धन्य' अर्थ में प्रचलित हुआ।

लिया और अपने श्वसुर राज-राणा फतहसिंह के यहां मेहमान बनने की जो आज्ञा दी थी, उसके अनुसार कृपा की और श्वसुरालय (देलवाड़ा) को पवित्र कर दिया।

उदयपुर में सावनी तीज का जलूस*

दोहा

श्री लम्बोदर शारदा, विनती कर निज वांण।
गीतां जात झमाळ गत, बरणों संभु बखाण ॥१॥

गीत (झम्माल)

उछव तीज पोहो ऊगतै. आयर जगनीवास।
संभू दन दुलहो सुपह, हेलां वधै हुलास ॥
हेलां वधै हुलास, आभूषण अंबरां।
गोठ हगामां गहर' तोल हय तंमरां ॥
कायब कायब परा, लुटावत लाख रै।
छोळ हिलोहळ छलत, रूप रतनाकरै ॥२॥

[१] गणपति और शारदा से प्रार्थना कर (राजस्थानी गीतों में) 'झम्माल' नामक गीत में महाराणा शंभुसिंह की प्रशंसा करता हूं।

[२] सदैव दुलहा बने रहने वाले महाराणा (शंभुसिंह), श्रावणी तृतिया के दिन सुबह होते ही राजमहलों से, तालाब के बीच बने हुए जगनिवास महल में (त्यौहार मनाने के लिये) जा पहुँचे। उनके मन में हर्ष की लहरें उठ रही

*टिप्पणी:—प्रस्तुत गीत से स्पष्ट होता है, कि सावणी तीज का जुलूस' जगनिवास महलों से नाव द्वारा, एवं गणगौर घाट से हाथी द्वारा तीज के चौक (देहली दरवाजा) तक सरे बाजार होकर महलों की ओर प्रस्थान करते थे।

थी। वह अच्छी पोशाक एवं आभूषण धारण किये हुए थे। उत्सव की हलचल के साथ ही वहां पर सब के लिये एक प्रीतिभोज आयोजित किया गया। उस समय महाराणा एक २ कविता पर लाखों का इनाम इस प्रकार देने लगा मानो रत्नाकर समुद्र तरंगित हुआ हो।

जगनिवास या जोख कर, नोख विराजे नाव।
संभू अलबेलो सुपह, अल बेलाइ उमराव ॥
अलबेलाइ उमराव, झलूसो साझियां।
सुणौ अलाप संगीत, बाजत्रां बाजियां ॥
पीछोला री पाळक, मेळा मूहरा।
घाट घाट पर घणा, जुड़ै त्रिय-जूहरा ॥३॥
जुड़ै त्रियां घण जूहरा, घाट घाट पर घेर।
थां घाटां पर वे त्रियां, नरखे उदिया नैर ॥
नरख उदिया नैर, अठैइ अमरावती।
सिंघळ दीप समान, छटा छव छावती ॥
पर सथान सदरूप, किना अलकापुरी।
लखां विमाणां लूंब, अपछरां ऊतरी ॥४॥

[३] विनोद-प्रिय महाराणा जब दिन भर का उत्सव जगनिवास महल में मना चुके और अपने सामंतों आदि सहित राज-सी ठाटबाट से सजी हुई नाव में सवार हुए, तब बाजे बजने लगे और वारांगनाओं द्वारा गीत गाये जाने लगे। (इधर) 'पीछोला' तालाब के तट पर दर्शकों की भीड़ लगी थी, जिसमें प्रत्येक घाट पर स्त्रियों की टोलियां दिखाई दे रही थी।

[४] घाटों पर समूह बद्ध स्त्रियाँ, जो उदयपुर नगर की छटा देख रही थी उन सुन्दरियों से नगर की शोभा इस प्रकार बढ़ी, मानों—यहां अमरावती (इन्द्रपुरी) आ बसी हो अथवा सिंहल द्वीप की शोभा ने आश्रय लिया हो, या

'परीस्थान' अथवा अलकापुरी हो, या विमानों द्वारा लाखों की संख्या में अप्सरायें उतरी हों।

अपछर उतरी सी अवल, भवल देख रस भूल।
पोसाखां झलमल पहर, मँड हींदा मखतूल॥
मँड हींदा मखतूल, मचोळै मोह कै।
रोळै हार रळक्क, छंद छच्छोह कै।
लै लै गोडी लूंब, ललक्कै लूहरां।
(ज्यारां) कंठा घणा सुप्यार क, कोयल टूहरां॥५॥

लैं लै कोयल टूहरां, गावै ख्याल गरूर।
(के) आज्यो सावण पांव्हणां, पड़ँगां झलतां पूर॥
पड़ँगां झलतां पूर क, आज्यो पांव्हणां।
रळी पजोवण रेण, भवँर मन भावणां॥
बलखूंली लख बाट, भरळक्कै बीज कै।
कीज्यो ढील न कंथ, महोलै तीज कै॥६॥

[५] अप्सराओं के समान वनितायें प्रेम के झूलों में झूलती हुई चमकीले वस्त्राभरण पहन कर रेशमी डोरियों के झूलों पर आनन्द पूर्वक झूलने लगी। उनकी छाती पर हार झूल रहे थे। पैरों के बल से वे झूला ऊँचा बढ़ा कर, ऊँचे स्वर से 'लूहर' (गीत विशेष) गा रही थी। उनके कठ कोकिल के समान मधुर थे।

[६] (जिनके पति विदेश में थे) वे (अपने रूप के) गर्व से भरी हुई कोकिल-कंठों से गीत गाने लगी, जिनका भाव यह था,—हे मन भावन प्यारे! वर्षा की झड़ी सहते हुए भी आप सावन की इन रातों में मेरे आनन्द के लिये आना। यदि आप नहीं आये तो बिजली की चमक से (मारे भय के) मैं, बिलखने लग जाऊँगी। इस लिये (हे प्रियतम!) इस तीज के त्यौहार पर आने में देर मत करना।

तीज महोलै तिकण रै, आवै खड़ एराक ।
मुळक मुळक जावै म्हनें, लगन लगावै लाख ॥
लगन लगावै लाख, न आयां राज रै ।
ऊभी जोवूं बाट, बधाई आज रै ॥
डगर झिंगर गिरां, अँधारेई डाकज्यो ।
(पण) राजँद म्हांरी तीज, अहळ मत राखज्यो ॥७॥
अहळ राखज्यो वा दिसा, घणाइ आसँगा घाट ।
ओळगणां झट आवज्यो, बलमीज्यो मत बाट ॥
बलमी ज्यो मत बाट, कठैई काजनैं ।
(नतो) नाटक चेटक नार, रखैली राजनैं ॥
सोत घरे मत जाज्यो, भूलै भाँवणी ।
सेणां मांहरी तीज, मनाज्यो सावणी ॥८॥

[७] तीज के त्यौहार पर जिनके पति ऐराकी घोड़े दौड़ा कर आ गये हैं, वे संयोगिनी स्त्रियां हमें वियोगावस्था में देख कर हँसती हैं । इसी लिये आपके प्रति हमारी लगन लाखों गुनी अधिक बढ़ जाती है । (हे प्रियतम !) आज के इस मांगलिक अवसर पर मैं आपकी राह खड़ी २ देख रही हूँ । अतः आप अँधियारी रात में भी सघन पहाड़ों के रास्ते पार कर तीज के इस त्यौहार को रीता मत जाने देना ।

[८] हे मेरे स्मरणीय पति ! आप ऐसे स्थानों को छोड़ देना, जहां की स्त्रियां कुसंग (व्यभिचार) में रत हों । आप रवाना होकर रास्ते में कहीं मत ठहरना । अन्यथा कोई नर्तकी या जादूगरनी स्त्री आपको मुग्ध कर अपने यहां रख लेगी (फांस लेगी) । मुझे भूलकर आप किसी सौत के घर भी मत चले जाना । (हे प्रियतम !) आप तो (सीधे) यहीं आकर सावनी तीज का त्यौहार मनाना ।

सावण सैंण सँदेसड़ो, झट दीज्यो घण भूख।
ऊंचा तरवर थेंइ उठे, करज्यो मोर कहूक॥
करज्यो मोर कहूक, टहुकज्यो कोयलां।
जाज्यो झिंगुर थेंही, दादर दो हिलां॥
पीव पीव कहतो तुइं, जाय पपीहरे।
पीव पधारो कीझे, घण रै पीहरै॥९॥

(असो) मैळो पीछोलै मँडर, आलम कहै उछाह
महण बचा छळता मदां, (तनै) वाह पिछोला वाह॥
वाह पिछोला वाह, अपट ऊफाण रा
भलो वरुण रा भवन रीझावण राण रा॥
राण छटा यण रूप, दिठावै देसरां।
(थारी) कवण करां तारीफ, हगांम हमेस रां॥१०॥

[९] हे बादलों! तुम भी लूमकर (झूलकर) मेरे प्रियतम को सावन के त्यौहारों का संदेश देना। मयूरों! तुम भी ऊँचे २ वृक्षों पर बैठकर बोलना! अरी! कोयलों! तुम भी मधुर कंठ से कुहकना! झींगुरों एवं दादुरों! तुम भी आवाज लगाना! 'पीउ-पीउ' बोलते हुए हे पपीहे! तू भी मेरी स्मृति दिला कर मेरे स्वामी से कहना कि, आप अपनी पत्नी के नैहर महमान बनकर पधारिये (क्योंकि वह नैहर में है)।

[१०] पीछोला तालाब पर इस प्रकार मेला लग जाने पर दर्शक उत्साहित होकर कहने लगे— हे पीछोला तालाब! तुझे धन्य है। तू मस्ती से छलकता और पूर्ण तूफान पर आता हुआ समुद्र के बच्चे के समान दिखाई देता है। वरुण-भवन के समान तेरी शोभा है। तू महाराणा को प्रसन्न रखने वाला एवं देश-विदेश के दर्शकों के समक्ष महाराणा की शोभा बढ़ाने वाला है। तेरी प्रशंसा कहांतक की जाय? तेरे तट पर (तो) हमेशा उत्सव मनाये जाते रहते हैं।

संभु चढ़ै गज सेन लै, घूंमड बीरूघाट।
बज करनाळां आरबां, त्रांबाळां त्राहाट ॥
त्रांबाळां त्राहाट, पमंगां पक्खरां।
नाळां झड़त निहाव, चलै जुड़ चक्करां ॥
हलै मदाळां हसत, खँचैल खँभाहरां।
सामंतां हल साथ, हत्रोळां नाहरां ॥११॥

मिसल हरोल चँदोल मँड, सबल साख साखेत
बानां बँध कै नेत बध, छक छोहां छाकेत ॥
छक छोहां छाकेत, सुरंगा साझिया।
स्यामधमर समराथ, अगंजां गाँजिया ॥
पै-चारक बल प्रबल, सतोला सायधां।
बीरा रस झखबोळ, आराण उमाहिदा ॥१२॥

[११] (तदनंतर) महाराणा वीरघाट (गनगौर घाट) पर आये और नाव से उतर कर हाथी पर सवार हुए। उस समय उमड़ती हुई सेना आगे बढ़ी। करनाले, अरबी और तासे आदि बाजे बजने लगे, पाखरों से सुशोभित घोड़े जब चक्कर खाते हुए चलने लगे, त खुरतालों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। कुंभालों से जकड़ कर बांधे जाने वाले मतवाले हाथी आगे २ चलने लगे। उनके पीछे घोड़ों पर चढ़े सिंह-समूह-तुल्य सामंत गण बढ़े।

[१२] बलवान, कुलीन, सुन्दर सेना का नेतृत्व कर सकने वाले, उत्साह पूर्ण, अच्छी पोशाक से सजे हुए, सामर्थ्यवान्, स्वामी-धर्म निभाने वाले एवं अजेय शत्रु को भी दबा (झुका) देने वाले जो वीर थे, वे हरावल (सेना के अगले भाग) एवं चंदावल (सेना के पृष्ठ भाग) को सुशोभित करने लगे। सशस्त्र पैदल सेना भी बड़ी प्रबल थी एवं वीर रस से भरी हुई युद्ध का उत्साह रखने वाली थी (साथ २ चल रही थी)।

बलम खुलै खुल बहरकां, नग्गा खुलै निसाण ।
खुल रण गुघ्घर खणहणक, तंत्र खुले तंत्राण ।।
तंत्र खुलै तंत्राण, मुरातब मोहरां ।
बजत सलामी बाजु, व्है चम्मर चोहरा ।।
होय नकीबां हाक, नगाहाँ नद्दरा ।
फरै डाक चौतरफ, हुखंमी हद्दरा ।।१३।।
चगै दिगज सामेर चल, सयल डगै खुल संध ।
सर सलकै धर खसमसै, फसरै फणां फुणिन्द ।।
फसरै फुणां फुणिन्द, हजम्मां हामलां ।
साधै होकम सको, मुसाभां मामला ।।
दमसहसां व्है सुदल, अणंद उछाह रा ।
रिवदा आदक रहै, हिये ,दस राह रा ।।१४।।

[१३] अर्दली-घुड़सवारों के भालों में लगी हुई झंडियां और हाथियों पर पतकायें फहराने लगीं । रण-कंकण (रणकुंत, वाद्यविशेष) खन-खनाने लगे । तंत्री आदि वाद्य भी बजने लगे । महाराणा के आगे २ राज्य-चिन्ह शोभा बढ़ाने लगे । दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़ी हुई सेना ने महाराणा का अभिवादन किया । जुलूस के बढ़ते ही महाराणा पर चोसरे चमर* ढुलाये (उड़ाये) जाने लगे । "निगाह† रखे महरबान !" कहते हुए चोबदार चलने लगे एवं सेना को आगे बढ़ने तथा रुकने के लिये आवाज देने लगे ।

टिप्पणी:—* आगे महावत, पीछे बैठे हुए सामंत एवं अगल बगल दो हाथी-सवारों द्वारा उड़ाये जाने वाले चमर को चोसरे चमर कहते हैं । अर्थात् चार तरफ से उड़ाये जाने वाले चमर ।

† जनता जो अभिवादन कर रही है, उसके प्रति महाराणा निगाह रखे (ध्यान दें)

[१४] सैन्य-प्रयाण के धक्के से दिग्गज हिल गये, सुमेरुपर्वत चलायमान होगया, तालाब छलक गये, पृथ्वी खिसकने लगी और शेषनाग के फन फिसलने लगे। महाराणा का इस प्रकार ससैन्य-प्रयाण देख कर मेवाड़ के दस हजार गांवों के निवासी प्रसन्न चित्त एवं सोत्साह दिखाई देने लगे तथा दसों दिशाओं के शत्रु चकित एवं भयभीत हो उठे।

संभु सुतण –सारूप–रो, झल आडम्बर झोख।
डम्बर मेघाडम्बरां, छांहगिरां रै छोक॥
छांहगिरां रे छोक, छत्र छत छावियो।
एरापत असवार, इन्द्र जिम आवियो॥
खड़ै बजार खतम्म, सँपेखै संगरां।
धनपत कोड़ीधजा, अवास उतंगरां॥१५॥

(जठै) चत्रसाल गोखां चढ़ै, नरखै कामण नूर।
वां कामण पर वारजै, सो अच्छर सो हूर॥
सो अच्छर सो हूर, कलानिध चन्द्र की।
सुरी परी भी सँकै, किन्नरी किन्द्र की॥
रती रती व्है रहै, गरभ गलोथमां।
तल भर जिकां तराज, तुलै न तिलोतमा॥१६॥

[१५] मेघाडंबर,* छांहगीर,† छत्र आदि राज-चिन्हों से सुशोभित एवं हाथी पर झूमता हुआ महाराणा स्वरूपसिंह का पुत्र शंभुसिंह इस प्रकार दिखाई देता था मानों साक्षात् इन्द्र, ऐरावत हाथी पर बैठ कर आया हो! जुलूस जब बीच बाजार में पहुँचा, तब जनसमूह करोड़पतियां के ऊँचे २ बने मकानों से उसे देखने लगा।

टिप्पणी:—* लाल बनात (वस्त्र विशेष) का बना हुआ स्वर्णदंडयुक्त राज चिन्ह विशेष।
† मखमल में सितारे आदि लगा कर मयूर पंखों से बनाया हुआ एक प्रकार का राज-चिन्ह।

[१६] ऊँचे २ मकानों में चित्र-भवन बने हुए थे। सीढ़ियों से चढ़ कर वहाँ से सुन्दरियाँ महाराणा के तेज को देखने लगी। वे सुन्दरियाँ ऐसी थी जिन पर सैंकड़ों अप्सरायें और हूरें वारी जा सकती थीं, देवांगनायें एवं किन्नरियां भी जिन्हें देखकर संकुचित हो जाती थी, रति भी जिनके सामने दर्परहित होकर रत्ती के समान हो जाती थी (सुन्दरता में सुन्दरियों का पलड़ा भारी था) (और तो सब ठीक किंतु) जिनके आगे तिलोत्तमा भी तिल भर नहीं तुल सकती थी।

(ज्यांरा) अँग में नहँ मावै अनँग, चाव्है साजन चीत।
(जे) विभल व्है जावै गळबथां, (पछै) गावै पावस गीत ॥
गावै पावस गीत, हिया रा हेथ रा।
मंडै कौतुक मेळ, सुमेळा सेथ रा ॥
दे ताळी हँस दुरत, तीजएयां तीज सी।
(फिर) तीज देखवाँ तंत बिलू मैं बीज सी ॥१७॥

(जठै) केइक कमणेती करण, कोयण खंच कबाण।
वरुणी भाथा रा विहुँइ, वाहै भंखण बाण ॥
वाहै भंखण बाण, कजलची साण रा।
(जे) पड़ै वार का पार, अनँग मदपाण रा ॥
(जीसूं) घायल व्हैं केइ घुमैं, केइ तड़छां करै।
कै घव धूणै कमळ, फेर टळ टळ फरै ॥१८॥

[१७ सुन्दरियों के अंगों से कामदेव उफनता हुआ सा दिखाई देता था। वे अपने प्रियतम की इच्छा करती हुई विह्वल होकर एक दूसरे के गले में हाथ डाल कर हार्दिक प्रेम से बरसाती गीत गारही थी और पति से मिलने के लिये अनेक तरह की विनोद क्रीड़ा कर रही थी। मानो तीज-त्योहार की साक्षात् प्रतिमायें वे सुन्दरियां हाथ से ताली बजाती हुई जुलूस की ओर देख एवं हँस

कर छिप जाती थी और फिर जुलूस को देखने के लिये बिजली की तरह चमक उठती थी।

[१८] कई सुन्दरियां (वहां) तीरन्दाजों के समान काम कर रही थी। वे अपने कोयों (पलकों) को कमान की तरह ऐंच कर, पलकों के रोम-रूपी भाथे (तरकश) से चितवन-रूपी बाण, जो अंजन-रूपी खुरसान पर तेज किये हुए थे एवं जिन पर कामदेव मद की 'पाण'* दी हुई थी, चला रही थी। उनके लगने से कितने ही घायल होकर झूम रहे थे, कई तड़फड़ा रहे थे, एवं कितने ही सिर धुनते हुए बच कर हट जाते थे।

(जठै) केइ अेझनगाळी कहै, (के या) बाळी बेस बुरीज।
या पावस अप्रियामणी, तन अनंग दन तीज ॥
तन अनंग दन तीज, झरोखै झांखणो।
(जीमें) आज कठिन है अली, (अलिओ) जोबण राखणो ॥
जोबन ढव्यो न जाय लाजरा लंगरां।
करै कोट कुळ काण, (तोभी) उलंधै कंगरां ॥१६॥

(जीमें) देह उफण जोबन दियो, मनमथ दियोमजेज।
नाहक खोवीजे नहीं, सूना ये दिन सेझ ॥
सूना ये दिन सेझ, रती कद राखजै।
ऊंचा झलम अवास, चढ़ा मद चाखजै ॥
भर गळबांही भमर-रू पड़वा पोढ़जै।
अतरा लपटा, झीण–दुपटा गोढ़जै ॥२०॥

टिप्पणीः—*लुहार लोहशस्त्र की धार को गरम करके पानी में ठंडी कर देता है, जिससे उसकी धार खिरती नहीं इस क्रियाको 'पाण' कहते हैं।

[१६] कई विनोद-प्रिय सुन्दरियाँ आपस में कहने लगी (वास्तव में) यह नादान (तरुण) अवस्था बुरी बला है। यों ही कामदेव सताता रहता है, फिर मेघ का गर्जना और तीज के त्यौहार का आना तो गजब ही ढाह देता है। (सचमुच) हे सखी ! ऐसे समय में यौवन-रूपी हाथी को रोकना कठिन है। लज्जा की शृंखला और कुलीनता की दीवार बना कर रोका जाय, तो भी यह उन्हें लोप कर चल देता है।

[२०] जब यौवन उभार पर है और कामदेव ने हमें नाज नखरे दिये हैं, तब थोड़ी देर के लिये भी सूनी शय्या पर दिन किस प्रकार बिताये जांय ? इसलिये (हे सखी !) झिल मिलाती उच्च अट्टालिकाओं में खूब मद-पान करके प्रियतम के गले में हाथ डाल अतर से सने हुए महीन दुपट्टे को ओढ़ कर शय्या पर शयन करना चाहिये।

(आज तो) अछां न दूही बोलियां, नरां न दूही नार।
रत यण दूहा रेहता, (यक) देख्या जागिरदार ॥
देख्या जागिरदार, हुकम रै सांकड़ै।
आता सावण मास, तीजरै टांकड़ै ॥
सीख न देऊ सुपह, (तो) अछंभो आखरां।
(अर) सीख न लै यण समैं, ज्यांइ नानत ठाकरां ॥२१॥

(आज तो) बचन अनोखा बंधिया, जोवां घणी जुहार।
कर खड़मा चढ़ काछियां, तीजां तणै तुहार ॥
तीजां तणै तुहार, नद्यां तर आवजै।
झड़ वांडा सर झेल, मल्हार गवावजै ॥
सड़क नसै सरणाट, रंग रस रीझ रो।
मांढ्यांइ लीजै मजो, (ईं) तंत पर तीज रो ॥२२॥

[२१] ऐसे समय में वृक्षों से लतिकायें और पुरुषों से स्त्रियां अलग नहीं रहती हैं (आलिंगन किये रहती हैं)। ऐसी ऋतु में स्त्री से दूर रहने वाले एक मात्र जागीरदार है, जो राजाज्ञा मान कर नौकरी में लगे रहते हैं । किन्तु श्रावण मास और तीज के त्योहार के आने पर जो राजा अपने सामंत को घर जाने की छुट्टी नहीं देता, उसकी निष्ठुरता पर आश्चर्य होता है और उन्हें लानत (धिक्कार) है, जो सामंत ऐसे अवसर पर घर की इच्छा कर छुट्टी नहीं लेता।

[२२] आज तीज के त्यौहार पर सबों को चाहिये कि, वचन पालन करने के लिये अपने स्वामी से सलाम कर घोड़े पर बैठ कर द्रुतगति से बढ़ाते एवं पूरी बहती हुई सरिताओं को पार कर अपने २ घर लौट जावें । घनघोर जल-वृष्टि सिरपर सहन करते हुए मल्हार राग गवायें। तीज का त्यौहार तो विनोद, प्रेम और खुशी मनाने का खास दिन है। अतः खूब मद्य-पान कर इस अवसर पर जबरदस्ती सुख लूटना चाहिये !

जिकां सासरै घण जिका, सावण आतेइ साज ।
साकुर भड़ां सँगारजे, अलँगां खड़जे आज ॥
अलँगा खड़जे आजर, तीज मनावजो ।
कर गल बाह कसूंभां, पीजो पावजो ॥
ठठां गाल ठहेल्यां, हास विलास रै ।
सुरग-लोग रा सुखः, व्है सावण सासरै ॥२३॥

त्रिया कारणे मात पित भ्रात कुटम्ब दे भूल ।
त्रिया कारणे धन तजर, करजे त्रिया कबूल ॥
करजै त्रिया कबूल, अंखिया ऊपरै ।
समरण तीरथ सेव, ध्यान अलधा धरै ॥
त्रिया पदारथ तंत, रची विध रीझरी ।
भूलीजै किम भाय, त्रिया दन तीजरी ॥२४॥

[२३] जिनकी स्त्रियां उनके नैहर में है, उनके स्वामियों को चाहिये कि, वे श्रावण लगते ही अपने घोड़ों और साथियों को सजा कर शीघ्रातिशीघ्र वहां पहुँच कर तीज का त्यौहार मनावे। गलबांही दिये, घोटी हुई अफीम पिये और साथियों को पिलावे। सावन महिने में परिहास-गान एवं विनोद से ससुराल स्वर्ग के समान सुखद प्रतीत होता है।

[२४] पुरूष को चाहिये कि, स्त्री के लिये माता, पिता और भाई तक को भुलादे। द्रव्य का स्वार्थ भी छोड़ दे। एक मात्र स्त्री को अंगीकार कर अपने नेत्र की पुतली बनाये रखे। स्त्री के समक्ष ईश-स्मरण, तीर्थ, प्रभु-सेवा और ध्यान आदि को कुछ न गिने। क्योंकि विधाता ने स्त्री की रचना एक मात्र प्रसन्नता (विनोद) के तत्व या पदार्थ के रूप में की है, (तब कहो) उसे तीज के त्यौहार पर कैसे भुलाई जा सकती है।

(जठै) केइक हूँस नायक कहै, बायक अमृत बैण।
(के) आज तीज लायक उछब, नरखो लुभ २ नैण॥
नरखो लुभ २ नैण, संभु सारूप रो।
भूपां सरहर भूप, रती-पत रूप रो॥
बण नादानी बनो, भवँर मनभावणो।
जैपुर कें जोधाण, (जाणै) पधारै पांव्हणो॥२५॥

सर भर इसा समाज रो, बेखे सहर बजार।
प्रथीनाथ पाधारियो, (पछै) मेळा बड़ै मँझार॥
मेळा बड़ै मँझार, लखां नर नारियां।
हंजा रंभा भीड़, हुलास हजारियां॥
संख्या कर कुण सकै, ईं मेळै मूहरै।
जुड़ियो खलक जिहान, जाण यक जूहरै॥२६॥

[२५] नायक (पति) की इच्छा रखने वाली सुन्दरियों में से किसी ने सजग होकर अमृत भरी वाणी में कहा,—हे सखियां ! आज का यह जुलूस तीज के त्यौहार के योग्य ही मुग्धकारी है, जिसे देख कर नेत्रों को सफल बनाओ। इस जुलूस में महाराणा स्वरूपसिंह के पुत्र शंभुसिंह हैं, जो राजाओं के राजा एवं कामदेव स्वरूप हैं। आज ऐसा जान पड़ता है कि, यह मनमोहक तरुण महाराणा, दुलहे के रूप में जयपुर अथवा जोधपुर दो में से कहीं एक जगह मेहमान बनेंगे।

[२६] इस प्रकार बाजार में होते हुए महाराणा का जुलूस, जहां भारी मेला लगा हुआ था, वहां पहुँचा। लाखों की संख्या में स्त्री पुरुष इकठठे हो रहे थे, सुन्दरियों की टोलियां अनेक प्रकार से हर्ष मना रही थीं। उस घनी भीड़ की गिनती करना असंभव था। तब ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त संसार सिमट कर यहीं इकट्ठा हो गया हो।

(जठै) कर दरसण दुनियां कहै, देखो संभु दिवा [illegible]।
आलम सूरज ऊगियो, जेठ पोहोरो जाण ॥
जेठ पोहोरो जाणक, सूरज ऊगियो।
कँवल कँवल विकसाय, हियो प्रफुलित कियो ॥
करण सहंसा कियां, कुमी राखै कणो।
भलो आपणो भाग, धनद पायो धणी ॥२७॥

यतैं मेघ चढ़ उमँड़ियो, चहुँवळां बँध चाळ।
झड़ निहाव पड़ियो झुलर, खळहळ नाळर खाळ ॥
खलहल नाल र खाल, विपाड़ा बज्जियो।
ठँभें संभु वै ठाहर, साकुर सभ्भियो ॥
बाव्हड़ियो बे बाहां छांगां छूवतो।
झलम साज झखबोल, चोल रँग चूवतो ॥२८॥

[२] महाराणा के दर्शन कर सब लोग कहने लगे—भगवान एकलिंग के दीवान राणा को देखो, यह पृथ्वी पर सतेज ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान उदय हुआ है, इसने सब के हृदय-कमल विकसित कर दिये हैं। (सचमुच) इसका तेज सहस्रों किरणों के समान है। यह सूर्य से किसी भी माने में कम नहीं है। (वास्तव में) हमारा यह सौभाग्य है कि, हमें कुबेर तुल्य वैभवशाली स्वामी मिला है।

[२८] इतने ही में जब चारों ओर से आकर मेघ छा गये, अधिक जल-वर्षा से नाले और परनाले जोरों से बह कर ध्वनि करने लगे, तब महाराणा ठहरकर हाथी से उतरे और घोड़े पर सवार हो जुलूस सहित महलों की ओर लौट गये। उनका घोड़ा ऊँची उड़ान लेकर दौड़ने लगा, जिससे महाराणा की दोनों भुजाएँ अट्टालिकाओं की छतों को छूती जा रही थी। महाराणा की चमकती हुई सुरंगी पोशाक के भीग जाने से लाल रंग टपक रहा था।

चोल रंग साखत चुवत, भड़ज पियारो भास।
अरुणोदय रै आवरण, (जाणे) सूरज रो सपतास॥
सूरज रो सपतास, जड़ाव जेवरां।
पांव घमंकां परा, ठमंकै नेवरां॥
संभू आड मचोल, डुलायो डांण में।
मदन रतुम्बर मकर, तरै महारांण में॥२९॥

उठी सुरिन्द्र उमंडियो, अठी नरिन्द्र उमंड।
ओल्हर झड़ मँडियो उठी, मोज अठी झड़ मंड॥
मोज अठी झड़ मंड, छँदां अणछेह के।
उठी गाज ज्युंह अठी, त्रंबालां त्रेहके॥
उठी बीज रो आभ, अठी जर अम्बरां।
उठी छटा ज्युंह अठी ढुलंतां चम्मरां॥३०॥

[२६] महाराणा जिस घोड़े पर सवार थे, उसका नाम प्यारा था। उसके साज भीग जाने से लाल रंग टपक रहा था। रंग से तर हो जाने पर घोड़ा ऐसा दीखने लगा मानो प्रातःकालीन सूर्य की अरुणिमा से ढँका हुआ श्वेताश्व हो। घोड़े के जटित आभूषण थे। पैरों की ध्वनि के साथ २ नूपुर बज रहे थे। घोड़े को जब महाराणा ने रानों (जंघाओं) में दबा कर ऊँचा उड़ाया, तब ऐसा प्रतीत होने लगा मानो महाराणा में— सुन्दर मदन (कामदेव) और उसके अश्व में (कामदेव का वाहन) मत्स्य प्रवेश करके उस अपार जल प्रवाह को पार कर रहे हों।

[३०] उधर से सुरेन्द्र और इधर से नरेन्द्र (महाराणा) बढ़ चले। एक ओर रह २ कर जल वृष्टि हो रही थी और दूसरी ओर अपार आनन्द। उधर गर्जना हो रही तो इधर वाद्य। वहां बिजली चमक रही थी तो यहां जरी के वस्त्र। उधर छटा छा रही थी तो इधर महाराणा पर चमर ढुल रहे थे।

चमर ढुळंतां चालियो, संभु भूप सिरमोड़।
हल कोतल जुड़ हाथियां, जुड़ उमरावां जोड़॥
जुड़ उमरावां जोड़, अठंग ओछावतां।
घर घर बंधै कळस, बधावा गावतां॥
बण रँग भीनो बींद, छटा घण छात रो।
सावक बणियो साथ, बणाव बरात रो ॥३१॥

बणा बणाव बरात रो, बैठ सरै दरबार।
दिये रजा भड़ दूसरां, मेले नजर जुहार॥
मेले नजर जुहार, यतै ओधायतां।
सद पट भूषण सार, बणाव बणायतां॥
हाजर किय जिण हूँत, कैक न्यामत किया।
जे घण लायक जिका, नजर धारण लिया ॥३२॥

[३१] जब चमर उड़वाते हुए राजाओं के सिरमौर महाराणा महल में लौटे, तब आगे २ कोतल (महाराणा के निजी सवारी के घोड़े), हाथी और सामंत चल रहे थे, विशेष उत्साह के साथ रास्ते में प्रत्येक घर पर मंगलगान के साथ २ नगर निवासी कलश वंदा रहे थे। महाराणा उस समय रंग से सने हुए दुलहे की तरह शोभा पा रहे थे और जुलूस की शोभा बारात की तरह मालूम होती थी।

[३२] जैसे मानो बारात सजाई गई हो, ठीक उसी तरह महाराणा ने महलों में आकर सभा की ओर और सबकी ओर ध्यान देते हुए सामंतों को विदा दी। तदनंतर पोशाक और आभूषण रखने वालों ने, जुलूसी पोशाक बदल लेने पर महाराणा के सामने उपयुक्त वस्त्राभरण प्रस्तुत किये। महाराणा ने भी अपनी पसन्द के अनुसार वस्त्र धारण किये और कई योग्य पुरुषों को पुरस्कार दिया।

धारे जर अम्बर धजर, नपट अम्होलख नग्ग।
हीर पनां माणक हदां, मोताहळ झगमग्ग ॥
मोताहल झगमग्ग, सा धारे सोव्हता।
हलियो सम्भु दिवाण, खमां खमां होवतां ॥
वेंड मजेजा देतो, दीह दराजियो।
बाड़ी महलां विचै, सुभाँत विराजियो ॥३३॥

महलां सर बाड़ी महल, चग पड़दां चँदवास।
परस विताण पेखियो; ताम किना जरतास ॥
तास किना जरतास, झलामल जोत रो।
काचां झाड़ फानूस, हबोळो होत रो ॥
सभा जोड़ उछरंग, उमंग उछावतो।
बैठो संभु नरिन्द्र यंद्र छत्र छावतो ॥३४॥

[३३] महाराणा ने जरी की पोशाक पहनी और बढ़िया नग, हीरे, पन्ने, माणिक एवं मोतियों के आभूषण धारण किये जिनसे सारा महल जगमगा उठा। बाद में निकट रहने वालों के सहित पुनः सभा करने के लिये ठाट के साथ चलते हुए बाड़ी महलों में आ बैठे चारों ओर से उस समय खमा-खमा की ध्वनी हो रही थी।

[३४] राज-प्रासादों में बाड़ी महल (अमर महल) सबसे ऊंचा हैं, वह जरीके पड़दों, चँदवों और फरसों से सजाया गया था, जिससे एक प्रकार की नई ज्योति झिलमिला रही थी। दर्पण एवं झाड़ फानूस के कारण और अधिक प्रभा फैल रही थी। वहां उत्साह पूर्वक सभा करके महाराणा इन्द्र के समान शोभा बिखेरते हुए बैठे।

छवी यंद्ररी छावतो, बैठो संभु नरिन्द्र।
पुंज नचत पांचालिका, छलत उरबसी छन्द॥
छलत उरबसी छन्द, जझक झमकाण री।
तुलबो जाण कुबाण, तणी मुलताण री॥
गावै मेघ–मलार, भाव लै भींजणै।
रुढ़ा झाला दिये, बिलाला रीझणै॥३५॥

रीझावत खुच्ची तरह, लची लंक पर लेर।
लची ज्योंहिं नच्ची रहत दीठ तरच्छी देर॥
दीठ तरच्छी देर, अदा अदभूत री।
परी अच्छरी किना, उरसरी ऊतरी॥
भरी मोहणी भावरु, हाव हुलासवी।
(जाणै) पासी सुरां पियूष, आसुरां आसवी॥३६॥

[३५] इन्द्र के समान शोभा बढ़ाते हुए महाराणा जब सभा भवन में आकर बैठे, तब वारांगनाओं का समूह सामने आकर नृत्य करने लगा। वारांगनाओं के अंग से उर्वशी के समाम शोभा झलक रही थी। जब वे बनावटी झिझक से रुक जाती थी, तब घुंघरू झनझना उठते थे। उनका लचकना मुलतान कमान की तरह था। वे भीग गई हो, वैसा भाव प्रदर्शित कर मल्हार राग गा रही थी और हाथ से संकेत कर रसिकों को मोहित कर देती थी।

[३६] सीटी पर खिंच कर (तन कर, ऐंठ कर) आने वाले कपोत पक्षी की तरह (नर्तकियां) लंक लचकाकर नाचती और तिरछी दृष्टि डालती हुई प्रसन्न कर देती थी। उस समय उनकी अदा (शोभा) अद्भुत थी। वे ऐसी दिखाई देती थी मानों आकाश से अप्सरायें उतरी हों। उनके हाव भाव बड़े ही मोहक थे। (उनके सौंदर्य से) ऐसा जान पड़ता था मानों मोहिनी रुप धारण कर ये वारांगनायें देवताओं को अमृत एवं असुरों को मदिरा पिलाकर ही रहेंगी।

ऐ हगाम ऐ होखआ, झोखां सहल झलास।
संभू सुतण सरूप रो, हरदन कियां हुलास ॥
हरदन किया हुलास, रंग रलियो रमें।
अष्ट सधी नवनधी, लियां भुज ऊधमें ॥
चक्रवै हुवणा चन्ह, रुप छलतो रहै।
"बखत" बखाण-बखाण, कठा तांई कहै ॥३७॥

[३७] ऊर्ध्व प्रासादों में महाराणा ऐसे उत्सव हमेशा मनाते और विनोद-क्रीड़ा करते हैं, साथ ही आठों सिद्धियों एवं नवों निधियां अपने हाथों से देते रहते हैं, जिससे यह महाराणा चक्रवर्ती के समान मालूम होते हैं। कवि कहता है कि इनकी प्रशंसा कहां तक की जाय ?

महाराणा सज्जनसिंह

[२६] गीत (साणोर, बेलिया)

पळ कल् अच्छ कली काज रा आठण,
 रखण लाज रा हेक रसाण।
लंबा पेज पाज रा लँघणा,
 पोह शंभु–सुतण राज रा पाण ॥१॥
पढ़त पनाह जका पण पाळा,
 न्हाळा नूर चढ़ावण नीर।
सजन सबळ सकबंध सवाळा,
 बाहु प्रळंब तुहांळा बीर ॥२॥
दुगम विदेश धाप रा दोड़ा,
 काटण फंद पाप रा काथ।
रूप विराट माप रा राणा
 (असा) है वधणीक आप रा हाथ ॥३॥
बिखमै जुग जिण में इणवारां,
 दासां अरथ बाधारा देण।
पूगे आज समंदा पारां,
 भुज थारा बीजा भीमेण ॥४॥

अर्थः—हे महाराणा शंभुसिंह के पुत्र ! तुम्हारे हाथ भूमंडल पर कलि के कुकृत्यों को ऐंठ देने वाले कल्पवृक्ष के समान एवं एक ही बार लज्जा रख-लेने वाले तथा बड़ी २ प्रतिज्ञा पूरी करने वाले हैं।

हे वीर महाराणा सज्जनसिंह ! आप सिक्का चलाने वालों (महाराणा स्वरूपसिंह) से भी सवाये हैं, प्रलंब बाहु हैं । आपके इन बड़े हाथों की पनाह (शरण) जो पालेता है; उसकी प्रतिज्ञा तुम पूरी कर देते हो और केवल दृक्पात से ही उसकी कांति अधिक प्रोज्वल कर देते हो ।

जो प्रदेश अगम्य हैं, वहां आपके ये प्रलंब बाहु पहुँच जाते हैं और पापियों को अघ-ख्याति नष्ट कर डालते हैं । हे महाराणा ! (वास्तव में) आपके हाथ विराट् रूप धारी प्रभु के हाथों के समान ही फैलने वाले हैं ।

हे दूसरे ही राणा भीमसिंह (सज्जनसिंह) ! एक आपके ही ऐसे बाहु हैं, जो समुद्र के उस पार तक पहुँचते रहते हैं । (यही कारण है कि) ऐसे विषम समय में भी आप अपने हाथों से सेवकों की अर्थ-वृद्धि करते ही रहते हो ।

[२७] गीत (सोहणो साणोर)

बड़ हसत–साळ बाड़ण हलखा बँभ
भर गढ़दारां हूँथ भल्यो ।
छूट चोक ऊपर छंछाळो,
हिन्दूपत घूमतो हल्यो ॥१॥

मोहोदध तटां भागलां मँडतां,
पाकड़ हथ जाजुली पटो ।
हठकण परां संभु–सुत हाथी,
व्हो सजजण कोचटी हठो ॥२॥

बाँधिया ठाँण केही बलबंडां,
लग जिण फेरण कळा लही ।
बानाबंध गयंद बडाळो,
नागद्रहो बान्हड्यो नहीं ॥३॥

वळां अतुल बीचोकर बाटां,
लाखां भल भल भणा लह्यो।
रहियां डाण चोक गज राजा,
राण मचल गाजतोई रह्यो ॥४॥

अर्थः—(प्रिंस एलवर्ट के आने पर महाराणा सज्जनसिंह जब बंबई गये तब उन्होंने समुद्र तट पर देखा, कि शाहजादे का जहाज आने वाला है)— राजाओं के बैठने के लिये कुर्सियां लगाई गई थीं, गड़दार (हाथियों को काबू में करने वाले) रूपा अंग्रेजों ने उस जगह को महान् हस्तिशाला का रूप दे रखा था, जिसमें राजाओं को हाथियों की तरह जबरन प्रविष्ट करा रहे थे। परन्तु मस्त हाथी के समान हिन्दू-पति महाराणा कुर्सियों के दरबार में नहीं गये और बाहर ही क्रुध होकर समुद्र किनारे भूमते हुए घूमने लगे।

महाराणा, समुद्र-तट पर आहाते रूपी अर्गला से नहीं रूक सके और (विवश करने पर) उन्होंने पटा के समान चमकती हुई तलवार हाथ में मजबूती से पकड़ ली। इसके उपरान्त जब अंग्रेज ऑफीसरों ने शाहजादे के जुलूस में, जहां दूसरे राजा लोग बैठे हुए थे, संमिलित होने के लिये कहा, तब छेड़े हुए हाथी के समान रूप धारण कर लिया।

(गड़दार) रूपी अंग्रेज ऑफीसरों द्वारा हाथियों के समान राजा-गण उस हस्तिशाला रूपी सभा के आहाते में बांध दिये गये (अनुशासन में जकड़ दिये गये), परन्तु ऊर्ध्व-काय हाथी के तुल्य जो कीर्तिमान् नागद्रहेश्वर (मेवाड़-राणा) थे, (वे शाहजादे के जहाज से उतरते ही मुलाकात कर जहां ठहरे हुए थे, वहीं लौट गये)। गड़दारों (अंग्रेजों) ने खूब यत्न किया किंतु महाराणा नहीं रूके (जुलूस में संमिलित नहीं हुए)।

जब महाराणा अपनी निरुपमेय शक्ति द्वारा गड़दार रूपी अंग्रेज ऑफीसरों के बीच से लौट गये, तब लाखों मनुष्यों ने प्रशंसा की। उस चौगान में

हाथियों के समान कई राजाओं ने अपनी मस्ती समाप्त की, परन्तु मतवाले राणा गरजते ही रहे।

[२८] गीत (वेलियो साणोर)

गिर तरबो वणै बुडोणै तिमंगळ,
बल हरियो राखै अण बीख।
कारज बड़म स्याम रा करियो,
साँभरियो हणमत सारीख ॥१॥

जायो घर केहर पुळ जसमो,
वीरत रसमो बेग वणाव।
वायक नँभण प्रभु रा बसमो,
रूद्र एक-दसमो ओ राव ॥२॥

दाहिक खळां सुरज विरदायक,
जीवायक मुरछतियां जोत।
हिंदवांरा नायक रै हाजर,
द्रोणाचळ लाहिक देसोत ॥३॥

मारग दुगम लवणदध मापै,
लख असुरां आपै नहँ लेस।
छोड़े हुकम सजण जोइ छापै,
बजरँग रै आपै वखतेस ॥४॥

अर्थः— पहाड़ों (बड़ों) को तैराने (बचाने) वाला, मत्स्यों (शत्रुओं) को डुबो (नष्ट कर) देने वाला, ईश्वर (स्वामी) के बल पर निर्भय रहने वाला एवं अपने स्वामी (महाराणा) का कार्य सफल करने वाला चौहान बख्तसिंह हनुमान के समान है।

वीर बख्तसिंह यश के मुहूर्त में केशरीसिंह के यहां पैदा हुआ है। इसका रूप वीर रस पूर्ण है। अपने स्वामी के अधीन रह आज्ञा पूरी करने वाला राव-पद धारी यह चौहान मानो ग्यारहवां रुद्र है।

हिंदूपति महाराणा का यश-धारी सामंत शत्रुओं के दुर्ग को जला देने वाला, मूर्च्छित (निराश) होने पर द्रोणाचल को ले आता है और संजीवनी बूटी देकर (वैसा प्रयत्न करके) जीवन-शक्ति देने वाला है।

कठिन मार्ग (आपत्ति) पार कर लवण समुद्र (दुष्ट प्रकृति) की थाह लेने वाला एवं असुरों (दानवीय स्वभाव वालों) से निर्भय रहने वाला हनुमान के सदृश बेदला का स्वामी चौहान बख्तसिंह है, जो अपने स्वामी महाराणा की आज्ञा बराबर पालता है !

विशेषः— महाराणा जब बंबई गये थे, तब यह बेदला का स्वामी बख्त-सिंह भी साथ था। महाराणा समुद्र तट पर लगाई गई कुर्सियों के दरबार में और शाहजादे के जुलूस में शरीक होना नहीं चाहते थे। यह बात अंग्रेज ऑफिसरों को सामंत बख्तसिंह ने ही समझाई। इसी लिये जब शाहजादा जहाज से उतरा, तब सर्व प्रथम महाराणा मुलाकात कर अपने डेरे में चले गये। बख्तसिंह की प्रशंसा कवि ने इसी लिये की है कि, वह महाराणा का सच्चा भक्त सामंत था।

नीति निपुण महाराणा सज्जनसिंह

[२८] गीत (छोटा साणोर जागड़ा साणोर)

बदरँग रँग पहल हेर दहुँ बाजू,
कींमत कळा अकूंतां।
चोपड़ अजब रची चीतोड़ो,
हरदन खेलक हूँतां ॥१॥

जे टीपां वाजत जग जीपण,
दीयत भाख दलूखै ।
जिकां नरां सज्जण घण जाणक,
चट री चाल न चूकै ॥२॥

पासा तणी पड़त कोइ पोहोरे,
थावै थाल अथालै ।
तो पण भूल कथे संभु तण,
हींणो दाव न हालै ॥३॥

आणे प्रतभीड़ अलँगा रा,
रमे जुवा जिम राड़ो ।
जाण न दै बाजी ज्यां जुवर्‍यां,
मांझी नृप मेवाड़ो ॥४॥

अर्थ:— दोनों पक्ष की सार* (बात) के बदरँग और रँग (अच्छे व बुरे परिणाम) को परखने में चित्तौड़-पति की युक्ति अतुलनीय है । महाराणा अपना चोपड़ (शासन संबंधी) खेल, खेल कर हमेशा बाजी मार लेते हैं (कभी हारते ही नहीं) ।

महाराणा का पासा डालने (शासन के प्रबंध) का तरीका, संसार के खिलाड़ियों (शासकों) पर विजय पाने के समान है । यदि उस तरीके को कोई

टिप्पणी:—* 'चोपड़' खेल खेलने में एक प्रकार की गोटी काम में लाई जाती है, उसे 'सार' कहते हैं ।

बुरा बतला देता है, तो महाराणा सज्जनसिंह अतिशीघ्र बाजी रच कर दाव देने में भूल नहीं करते ।

किसी समय यदि पासा (मामला) विपरीत भी पड़ जाता है, तो महाराणा शंभुसिंह के पुत्र भूल कर भी हीन दाव नहीं देते हैं (अधिकृत कार्य में सफलता प्राप्त कर ही लेते हैं) ।

दूर २ के रहने वाले खिलाड़ियों से मेवाड़-राणा जुवे के समान खेल रच कर, जुवारियों (शासकों) के हाथ बाजी नहीं जाने देते । (विजय प्राप्त कर ही लेते हैं) ।

[३०] गीत (सोहिणो साणोर)

सर सुभरां भरां ओप सागर री,
सागर ने सर उप न सुणी ।
सुपहां तूं उपमा सीसोधा,
तने न उपमा सुपह तणी ॥१॥

मोटां अचल छाय रह मेरु,
मेरु न छावै अचल मही ।
तूं छावै नृपहां संभू-तण,
नृप ते छावण कोय नहीं ॥२॥

मनजै अधक देवतां मघवा,
मघवा अधक न देव मलै ।
तूं अधको राणा भूपतियां,
तेंहूं अधक न भूप तुलै ॥३॥

सकल ग्रहां सर ऊपर सूरज,
गणै सुरज सर कवण ग्रहै ।

सज्जण रहै तुंइंज राजां सर,
राजा तैं सर कोइ न रहै ॥४॥

अर्थः— हे शिशोदिया-राणा ! जल से भरे तालाबों को समुद्र की उपमा दी जाती है, किंतु तालाब की उपमा समुद्र को नहीं दी जाती। उसी तरह आपकी उपमा दूसरे राजाओं को दी जाती है, किसी राजा की उपमा आपको नहीं।

हे महाराणा शंभुसिंह के पुत्र ! बड़े २ पहाड़ों पर सुमेरू पर्वत छाया करता है, किंतु पहाड़ सुमेरु पर नहीं। इसी तरह तुम्हारी छाया में सब राजा लोग रहते हैं, तुम उनकी छाया में नहीं।

हे महाराणा ! देवताओं में प्रमुख इन्द्र है, उससे बड़ा कोई नहीं माना गया है। उसी तरह आप भी राजाओं में बड़े माने गये हो, दूसरा कोई नहीं।

जिस प्रकार सब ग्रहों में एक सूर्य ही बड़ा है और अन्य सब छोटे हैं। उसी प्रकार सब राजाओं में, हे महाराणा आप ही बड़े हो, दूसरा कोई भी नहीं है।

[३१] गीत (बेलिया साणोर)

कर कँवळा कंथ आप जिम कीधो,
कवँळज नेंह भवँला अण कोध।

उघड़ै लेख आज कोइ अँवळा,
(तो तूं) सवँळा कर जाणै सीसोद

सरजी सीस निवाद सरज्जण,
ढ़ंगी कुण बज्जण तैं ढ़ंग।

रेखा मसी हुवै अणरज्जण,
(तो) रच सज्जाण केसर रै रंग ॥२॥

परठै निकूँ मँणा करता पण,
दल में अँणा घँणा सुख देण
विधना तणां भणां व्है कुवरण,
(तो तूं) सुवरण भणा तणा संभेण ॥३॥

करुणा करण हमेस कृपा कर,
केवल गुण आकर सुख कंद ।
उथत न हुवै चठी रा आखर,
(तो तूं) हथां सुधार सु ठाकर-हिंद ॥४॥

अर्थ:— हे शिशोदिया राणा ! आपको स्वयं कमलापति (विष्णु) ने अपने हाथों से अपने समान बनादिया है । आपका हठ देख कर ब्रह्मा भी चकित होगये; क्यों कि वह जिसके भाल पर उल्टे लेख (बुरा) लिखता है, उसे आप सुलटा (शुभ)कर देते हो !

हे राणा सज्जनसिंह ! आपको मानो गरीबों पर निवाज (कृपा) करने के लिये ही भगवान ने रचा है । (संसार में) आपके समान दूसरा कौन है, जो विधाता के द्वारा लिखे गये मसी (स्याही) के काले अक्षरों को केशर के कर देता है ?

हे महाराणा शंभुसिंह के पुत्र ! आपकी सृजन (ईश्वरीय) शक्ति विशेष रूप में है । उसका वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है ? वह केवल हृदय में ही सुख उत्पन्न करती है । यदि किसी के भाल पर विधाता कुवर्ण लिख देता है, तो आप उन्हें सुवर्ण के बना देते हो ।

हे हिन्दू पति महाराणा ! एक आप ही (जगत में) करुणाकर हो, जो हमेशा कृपा किया करते हो । (वास्तव में) आपके गुण-समूह सबको सुख

देने वाले हैं। यदि छठी के अक्षर* अनुचित हों तो आप ही उन्हें सुधार सकते हैं (अच्छा रूप दे सकते हैं)।

[३२] गीत (शुद्ध बड़ा साणोर)

तके देस दिसदिसा रा जठी हिंदव तठी,
कुण सँमै घटी कह सँभळ काजा।
उजागर ईस जिम राण सज्जण अठी,
राम जिम अठी रामेण राजा ॥१॥

महाबळ मांमला घोर दुसहां मुरड़,
कदम अमुरड़ अटळ अभैकारी।
अधप मेवाड़ ढूंढाड़ बढ़ती उरड़,
धज-वृषभ धज-गुरड़ अंसधारी ॥२॥

बड़ो बड़ विरद बँध बजण तारण तरण,
नपट चढ़ते भरण अचळ नीमां।
संभुवत जसावत विहँड़ असरण सरण,
मूल सुद्रमण धरण तणी सीमां ॥३॥

घाव त्रिपुरा कमल-दसा जेहा घलक,
दतां द्रब लंक हिख हलख देतू।
कैलपुर कुँरभ कुल तलक चढ़ती कळा,
हर हरी समोवड़ खलक हेतू ॥४॥

टिप्पणी:—* कहा जाता है कि, बच्चे के पैदा होने के छठे दिन विधाता भालपर भविष्य लिखता है।

अर्थः— विश्व विख्यात शिवस्वरूप इधर महाराणा सज्जनसिंह हैं और उधर रामचन्द्र के समान महाराजा रामसिंह हैं। दोनों के शासन-समय और कार्य-व्यवस्था को देख कर दसों दिशाओं के हिंदू यही कहते हैं कि, दोनों बराबर हैं, किसी में कोई कमी नहीं है। (दोनों की शासन-पद्धति एक समान है।)

ये दोनों नरेश निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ जाते हैं और डट कर बड़े २ मामलों को लौटाते रहते हैं (ऊपर से आये हुए, बड़े अंग्रेज अधिकारियों के बड़े २ उलझे-सुलझे मामलों में ज्यादा और कमी करवाने के लिये वापस भेज दिया करते थे, यह नहीं कि ऊपर से जैसा लिखा हुआ आया, उसे वैसा स्वीकार कर लिया जाय ! आवश्यक सुधार ये दोनों नरेश निडर होकर करवा लेते थे)। यह देख कर मेवाड़-स्वामी और 'ढूंढाड़' प्रदेश के नरेश्वर के लिये क्रमशः यही कहना पड़ता है कि, एक वृषभध्वज (शिव) और दूसरे गरुड़ध्वज (विष्णु) के अवतार हैं।

महाराणा शंभुसिंह के पुत्र एवं महाराजा जयसिंह के पुत्र दोनों कुलीन हैं, दोनों का यश 'तारन-तरन' (पार लगाने वाले) के रूप में प्रसिद्ध है, ये दृढ़ नींव (बात को पक्की कर) देने वाले हैं तथा अनाश्रितों के आश्रय-दाता हैं। इस लिये एक शूल धारी(शिव) और दूसरे सुदर्शनधारी (विष्णु) के समान माने जाते हैं।

केलपुरेश्वर (मेवाड़-राणा) और कछवाहे क्षत्रियों के तिलक रूपी नरेश्वर में से प्रथम तो त्रिपुर दानव एवं दूसरे दश-कंध (रावण) जैसे शत्रुओं पर आघात करने वाले हैं। एक अखूट धन दान में देता है और दूसरा समूची लंका को ही। (वास्तव में) संसार के हित के लिये एक हर स्वरूप है और दूसरा राम स्वरूप।

[२३] गीत (बड़ा साणोर सुद्ध)

अजब उछाहां भाव, आदर करण अजबरा,

भाळतां गाथ नहँ जाय भाखी।

महीपत केलपुर कमँध अंतस महीं,
बोलजे रही फिर कवण बाकी ॥१॥
उदैपुर जोधपुर जाण पाता अळध,
अळध अब कोय सुपने न आवै ।
पिछाणौ राण राजा प्रसिध प्रीत नै,
रीत बट मजीठै रंग राखै ॥२॥
भाइयां हूंत भाई भड़ां भड़ां हूँ,
सबळ दल दळां हूँ दरब सेथू ।
नंद संभेण तखतेस रा नंद जिम,
हेथ कुण नभे नरियंद हेथू ॥३॥
सांभळां हमें घण मनोरथ साधणौ,
कळी चहुँवें लगा समँद कांठै ।
सजण जसवन्त रा मेळ पर मधाई,
बधाई कुसल हिंदवाण बांटै ॥४॥

अर्थः— केलपुर-स्वामी (मेवाड़-राणा) और कमधज नरेश (जोधपुर-पति) में किसी तरह की कोई कमी नहीं कही जा सकती । इनकी परस्पर भाव भक्ति और सम्मान अनोखा है, इनकी ख्याति अवर्णनीय है ।

पहले उदयपुर तथा जोधपुर राज्य भिन्न २ माने जाते थे, किंतु अब सपने में भी अलग नहीं कहे जा सकते । महाराणा और महाराज के प्रेम को परखना चाहिये, वह मजीठ रंग के समान गहरा, अमिट और सौरभ युक्त है ।

सामंतों में भाइयों से भी बढ़ कर प्रेम है दोनों राज्यों के सैन्यबल एवं कोष भी पृथक २ नहीं माने जाते । (वास्तव में) महाराणा शंभुसिंह एवं तख्त-

सिंह के पुत्रों के समान ऐसा कौन राजा है, जो इनके समान परस्पर प्रेम निभाता हो ?

सुना जाता है कि, महाराणा सज्जनसिंह तथा महाराजा जसवंतसिंह में इस प्रकार का प्रेम देख कर कलियुग ने समुद्र पार जाने के लिये मुहूर्त निकलवा लिया है (कलियुग अब हिंदुस्तान में नहीं टिकेगा)। यह सुन कर हिन्दुस्तान उत्सव मना रहा है।

[३४] गीत (छोटा साणोर)

पथ पथियां रोक रखै तो पावस,
रह गालब तो मेघ रह।
मँडण रहे धनुख तो मघवा,
मेद्‌पाट यण बार महँ ॥१॥

बाँक विकास रखै तो विज्जल,
हुवै तेज तो तिमर–हर।
मानै हुकम जोन तो मारुत,
प्रथमी दमूं–हजार पर ॥२॥

उभळें तो सागर जो उभळें,
भवक जगै तो सोर भल।
बिरचे आड़ चढ़ै तो बालक,
आजो संभु–सुत रै अमल ॥३॥

मदां अपाट लगै तो मेंगल,
मुरड़ बहे तो सुजल मछ।
औ बातां त्रिसुधा आखियातां,
बरतै सज्जण राज बिच ॥४॥

अर्थः— महाराणा सज्जनसिंह के शासन-काल में राहगीरों को रोकने वाला एक मात्र पावस (वर्षा-काल), घुमड़ कर रहने वाला मेघ तथा धनुष चढ़ा कर रहने वाला इन्द्र ही है। अर्थात् (क्रमशः) बटमार, घमंडी एवं धनुर्धारी शत्रु सज्जनसिंह के राज्य में नहीं थे।

मेवाड़ के दस हजार गांवों पर प्रभाव एवं तेजस्विता रखने वाली बिजली, तपाने वाला सूर्य और अनुशासन लांघने वाला पवन है अर्थात् सज्जनसिंह के राज्य में प्रभावशाली, तेजस्वी एवं तपाने वाला विपक्षी कोई नहीं था।

महाराणा शंभुसिंह के पुत्र सज्जनसिंह के शासन में उफान पर आने वाला (उत्तेजित होने वाला) समुद्र, भभकने वाला बारूद और हठ पकड़ने वाला बालक ही था।

महाराणा सज्जनसिंह के शासन की ख्याति अक्षुण्ण रहेगी। इनके राज्य में मदोन्मत्त हाथी, विपरीत चलने वाला मत्स्य* ही हैं।

[३५] गीत (बड़ा सुद्ध साणोर प्रहास)

थरु थाण उतमाण कासी नयर थाण रै,
अमर मघवाण रै उरध आलै।
भूधरां मेरु चँद्र भाँण रै जिग भनी,
भुवपत्यां राण रै फरक भालै ॥१॥

गहर सर अनै सागर रतन गणा रै
पोहोप कंज दणा रै प्रगट पूजै।
उरगहां हजारी फणा रै ज्यों, अधप-
सको मंधु तणा रै भेद सूझै ॥२॥

टिप्पणीः—* प्रसिद्ध है कि मछली पानी की बहती हुई धार के सामने बढ़ जाती है

दंतियां उतँग दधकी चतुर दांत रो,
छब धरां पांत रो मदन छाजै।
अवणहां बली बलियां हणू बात रो,
आंतरो नृपां दइवाण आजै ।।३।।

छांहरां तरोवर कलपतर छजाण रै,
बुधवँतां बजण रै गवर बेटा।
जटधरां धूजटी रजाण रै जग जिसां,
छत्रधरां सजण रे लखत छेटो ।।४।।

अर्थः— अन्य पवित्र स्थानों एवं काशी में, देवताओं एवं इन्द्र में, पहाड़ों तथा सुमेरु पर्वत में, चंद्र एवं सूर्य में जितना अंतर है, उतना ही अंतर अन्य राजाओं एवं महाराणा में है।

मोटे तालाबों एवं रत्नाकर में, साधारण पुष्पों तथा सूर्य-विकसित कमल में, सर्पों और शेषनाग में जितना अंतर है, उतना ही अंतर अन्य अधिपतियों एवं महाराणा शंभूसिंह के पुत्र सज्जन सिंह में पाया जाता है।

ऊँचे हाथियों एवं समुद्र से उत्पन्न चार दांत वाले ऐरावत में, शोभा धारण करने वालों और कामदेव में, बलशाली वीरों तथा हनुमान में जितना अंतर है, उतना ही अन्य नरेशों एवं एकलिंग के दीवान राणा सज्जनसिंह में है।

वृक्षों तथा कल्प वृक्ष में, बुद्धिमानों तथा गणेश में, जटाधारी ऋषियों एवं शिव में जितना भेद है, उतना ही छत्रधारियों एवं महाराणा सज्जनसिंह में है।

[३९] गीत

कथण मेघ अप्रियावणां धनो बड़ कदा रा,
ऊनव हद हदा रा भुजां कीजा।

सरोवर सुकाँ असुकाँ नैंइ मधारा,

वधारा दिये भीमेण बाजा॥१॥

सुतण संभेण प्रतपाल़ रा सुभावां,

बांध घड़ चाळ रा हेख बाणां।

ताल रा रूप वागा रहै तिकांई,

रखै नत नाल़ रा भलो राणा ॥२॥

भणाकी कूप दरियाव जे भला भल,

नीर रा गल़ागल़ अजब नूरा।

अभरियां ठलाठल करै सीमा अड़त,

भर्यां ने छलाछल भरै भूरा ॥३॥

रघू सज्जण उमँड घुमँड मांडा रहत,

तके पांडा खलक जिकां तूठै।

वडा भांडा समँद जिसां अपटा वहण,

बड़ा बाड़ां झड़ाँ थुंहिज वूठै ॥४॥

अर्थः— हे महाराणा ! आप मानो दूसरे ही राणा भीमसिंह हैं। आपमें उदारता की उमंग घुमड़ते हुए मेघ के समान एवं आपके हाथों का कर्तव्य-पालन सीमा से परे है (अमित दान करते हैं)। जितने भी तालाब (मनुष्य) सूखे या भरे (गरीब तथा धनवान) हैं, उन्हें आप परिपूर्ण (धन धान्य संपन्न) करते रहते हैं।

हे शंभुसिंह के पुत्र महाराणा ! आप में पोषण करने का स्वाभाविक गुण है। दान देते समय आप फैले हुए घनघोर बादल के समान होकर, जो तालाब (साधारण स्थिति के) कहे जाते हैं, उन्हें भी बारहों मास बहने वाले नाले बना देते हो (गरीबों को आजन्म धन धान्य संपन्न कर देते हो)।

हे युवक राणा ! कूएँ (साधारण स्थिति वाले) और तालाब (मध्यम स्थिति के) जो निर्मल जल से पूर्ण हैं तथा जो बिल्कुल खाली (निर्धन) हैं, सबको एक साथ एक समान छलकते हुए (संपत्ति शाली) बना देते हैं ।

हे महाराणा सज्जनसिंह ! आप, उदारता की उमंग में मेघ-तुल्य उमड़ घुमड़ कर (धन) वृष्टि करते हुए संसार पर संतोष प्रकट करते हैं (प्रसन्न होते हैं) । फिर यही नहीं, जिस प्रकार घड़ों में बड़े २ घट होते हैं, उसी तरह तालाब आदि में भी समुद्र (बड़े २ सामंत आदि) हैं, जिन्हे सीमा से परे प्रवाहित करने के लिये अपार (धन) वर्षा किया करते हैं ।

[३१] गीत

दळां साज री चहूँ वल् भलाभल् री दमक,
 ढाण रुड़ आरवां हुई ढोलां ढमक ।
घोर तोपांण त्राम्बाल् घुरिया घमक,
 केलपुर तुहांली कणी माथे कमख ॥१॥
भड़ै भंबूर कर्भां भले भामला,
 हिंडुलै केन हाथ्यां लगत हामला ।
सूर पखरैत जग्देत व्है सांमला,
 महीपत तुहाला कवण सर मांमला ॥२॥
कसै कड़ियाल् करमाल् कसियां कँमर,
 चोसरा मदाळां पीठ ढल्ता चमर ।
भाण हिंदवाण रा भाख अणियां भमर,
 आज री चढ़ाई कठी वीजा अमर ॥३॥
चमूँ बँव परेटां बजत तुरमां चलै,
 महा भड़ मिसल रा मिसल माथे मिलै ।

धेर पर अरदली तणां भट जै घलै,
कर हला नागद्रह किसै चढ़सी कलै ॥४॥

सगा असगा सुपह जे हुखम सधारै,
धींग हर बियोई कोई गुमर न धारै।
विषम बानै उमँड घुमँड रै बधारै,
प्रबल संभेण-सुत कवण सर पधारै ॥५॥

भार पड़ अहप रा कमल जावै भजण,
ग्रहै सल समँद गोरंभ लागै गजण।
बळ अतुळ छत्रधर वीर सांगा बजण,
सफाई किसा पतसाह माथै सजण ॥६॥

अर्थः—सेना की तैयारी से साज बाज की चमचमाहट चारों ओर फैलरही है। अरबी बाजे तथा दमामे आदि लगातार बजाये जा रहे हैं। तोपें छोड़ी जा रही हैं। भयंकर तासे आदि रण-वाद्यों की ऊर्ध्व (गगन भेदी) ध्वनि हो रही है। हे केलपुरेश्वर (मेवाड़ राणा)! आज आप किस पर रूठे हैं?

चलते हुए ऊँटों से जंबूरे (छोटी तोपें) दागे जा रहे हैं, झूम कर चलते हुए हाथियों पर पताकायें फहरा रही हैं और केशरिया पोशाक पहने तथा कवच कसे हुए अश्वरोही वीर एकत्रित हो रहे हैं। हे नरेश्वर! (कहो तो) आज किससे बदला लेने की ठाना है?

ऐंठी हुई मूछों वाले हे हिन्दू-सूर्य महाराणा! आप दूसरे ही अमरसिंह के समान हैं आप आज स्वयं कवच तथा तलवार कसे हुए हाथी पर सवार हैं, चोसरे चमर उड़ाये जा रहे हैं। (कहिये तो) यह चढ़ाई किस पर की जा रही है?

बिगुलें बज रही हैं, सेना पंक्ति-बद्ध होकर बढ़ रही है, अर्दली के सैनिक आपके आस पास चल रहे हैं एवं बड़े २ सामंत हरावल में यथा स्थान बढ़ते चले जारहे हैं। हे नागद्रहेश्वर (मेवाड़-राणा)! आक्रमण कर आज आप कौन सा दुर्ग अधिकार में लेंगे ?

सम्बन्धी एवं असम्बन्धी (रिश्तेदार तथा जिनसे कोई रिश्ता नहीं) सब आपकी आज्ञा के अनुकूल हैं। युद्ध रत रहने वाले एवं दूसरे भी आपके समक्ष अभिमान नहीं करते (बड़े २ योद्धा तथा दुश्मन भी आपका सामना करने में असमर्थ हैं)। तब हे महाराणा शंभूसिंह के पुत्र ! इस तरह विकट रूप में उमड़ घुमड़ कर किस पर चढ़ाई कर रहे हो ?

सैन्य प्रयाण के धक्के से शेषनाग के फन (मस्तक) विदीर्ण हो रहे हैं, समुद्र का जल चंचल हो उठा है (कांप रहा है), गो-रंभ (भू-ध्वनि) गरजने लगी है। द्वितीय सांगा के समान अतुलनीय बलशाली महाराणा सज्जनसिंह ! आपकी यह तैयारी किस बादशाह पर हो रही है ?

(गिरिजा उत्सव)

दोहा

श्री गणनायक शारदा, बगसो युकत प्रबोध ।
गढ़ उदियाणै गवर रो, वरणूं उछब विनोद ॥१॥

गीत (झम्माल)

गवर उछव मेळ, गहर, दुघड़े सधते दन्न ।
पील चढ़्यो हिंदवाण-पत, सुरपत छटा सजन्न ॥
सुरपत छटा सजान्न, चमर ढुळ चोहरां ।
दोळ हबोळां दळां, छलत भड़ छोहरां ॥
धूंसां घड़ धूंकार, झँडा फररात रै ।
दग तोपां वड़ दुरँग, सलामी साथ रै ॥२॥

[१] उदयपुर में गिरिजा महोत्सव (गनगोर का त्यौहार) मनाते हैं, उसका वर्णन मैं करता हूँ। अतः हे गणेश ! तथा शारदे ! तुम मुझे वह ज्ञान दो, जिससे कि मैं सूक्तियां लिख सकूं।

[२] दो घड़ी दिन शेष रहने पर जब गिरिजा-महोत्सव का घना मेला लगा, तब हिन्दू पति महाराणा सज्जनसिंह हाथी पर बैठ कर इन्द्र के समान शोभा पाने लगे। उन पर चोसरे चमर उड़ाये जाने लगे। आगे पीछे सेना झूमती हुई चलने लगी, सामंत गण उत्साहित हो उठे। नगारे जोरों से बजाये जाने लगे, पताकायें फहराने लगीं और महाराणा के सम्मान में तोपों द्वारा सलामी दी जाने लगी।

चलत गयँद चामीकरां, अतुल जरां सफ अंगं।
जाण लंक गुम्मज अजळ, किना सुमेर शृंग॥
किना सुमेर शृंग, द्रोणगिर दीप रा।
पोरष एरापती, जुझावां जीप रा॥
सेना रा सिँणगार, थूल नद थाघणा।
दिग वाळा दिगपाळ, विदत जग वागणा॥३॥

चँचल नोपती जे चलत, अवळी बंध अँदाज।
जरकस्सी जीणां झलम, सकल झलम्मां साज॥
सकल झलम्मां साज, जड़्योड़ा जेवरां।
चमर मोरछल्ल ढुळत, रुळत पग नेवरां॥
कहां बेग पर किसा, तड़ो बड़ तोल में।
व्है सपतास हरोल, (जे) चले न चँदोल में॥४॥

[३] स्वर्णिम होदों और जरी के झूलों से सजाये हुए हाथी आगे २ चलते हुए इस प्रकार सुशोभित हुए मानों लंका दुर्ग के गुंबज हों या सुमेरु

शृंग हों अथवा द्रोणाचल के शिखर हों । वे हाथी युद्ध-विजय के लिये ऐरावत से भी बलशाली माने जाते थे । सेना के शृंगार स्वरूप वे, जलपूर्ण बहते हुए बड़े नालों एवं नदियों को पार करजाते थे । (सचमुच) वे हाथी दिशाओं के स्तंभ सदृश दिग्गजों के समान कहे जाने योग्य थे ।

[४] महाराणा के निजी सवारी के घोड़े पंक्ति-बद्ध होकर आगे २ चलने लगे। उनके जरीन जीन, एवं अन्य साज-बाज चमक रहे थे। आभूषणों से सजाकर उन (घोड़ों) पर चमर उड़ाये जारहे थे। पैरों में नेउर बज रहे थे । द्रुत गति में वे अतुलनीय थे। (सचमुचही) वे सूर्यके श्वेताश्व के भी पीछे नहीं, आगे चलने वाले थे ।

चलै सूर सामन्त चढ़, लीधां निज दळ लार ।
स्यांम दलां री ढ़ाल सिध, जँग आगाँ जूझार ।।
जँग आगाँ जूझार, भीम नर भांथरा ।
जाण लंक रा जोध, नडर रघुनाथ रा ।।
शंकर गणा सरीख, मोहरां मोहरां ।
फबिया बीरत फैल, चढयां बळ चोहरां ।।५।।

सहर मोहोर मेळा सरे, असवारी आवन्त ।
(जठै)चढ़ चोआरां चानण्यां, त्रियां निहारत तंत ।।
त्रियां निहारत तंत, बिनोद बढ़ावती ।
लूहरियां सारंग, घिदोळी गावती ।।
लै सालूड़ां लुलर, तान लै ताळियां ।
पायल ठणकत पाँव, चुटक चटकाळियां ।।६।।

[५] वीर सामंत स्वामी की सेना के ढाल स्वरूप, युद्ध में पांडु-पुत्र भीम के समान जूझने वाले, लंका-युद्ध में भिड़ने वाले रामचन्द्र के निर्भीक वीरों के

एवं शंकर के गणों के तुल्य थे वे वीरता से भरे हुए चौगुने शक्तिशाली अपनी सेना सहित हरावल में चल रहे थे।

[६] जब जुलूस का अग्रभाग शहर में लगे हुए मेले में पहुँचा, तब अट्टालिकाओं पर चढ़ी हुई सुन्दरियां देखने लगी। वे विनोद पूर्वक लुहरें तथा घिंदोली (गीत विशेष) गाती हुई साड़ी के छोर को पकड़े हुए ताली और चुटकी दे दे कर लय के अनुसार घूमर ले (गरबे के ढंग का एक नृत्य) नृत्य कर रही थी, जिससे उनके पद-भूषण बज उठते थे।

(ज्यांरा) उरज कोक जेहा उदत, अलकां उरगण अंठ।
भ्रूँह धनुख जेहा सुभल, कोकिल जेहा कंठ ॥
कोकिल जेहा कंठ, क्योंक बढ़कीक में।
अनँग बाण सूं अँखां, तुके इक तीख में ॥
अधर बंब सूं अधक, छटा रै छावलै।
मद सो जोबन मद, अधक रैइ आंवलै ॥७॥

चीर चुवां कंपा चुवत, जैन कबूले जोर।
(तो) बण्या चंद जेहा बदन, चूंथ न लिये चकोर ॥
चूंथ न लिए चकोर, डीठ चहुँ डोरका।
चंचां नखां चलाक, उडर चहुँ ओर का ॥
बप चंपक रै बरण, किसां न कबूलता।
(तो) दिपत भूंमरा दाख, भँवर कद भूलता ॥८॥

[७] सुन्दरियों के उरोज चक्रवाक जैसे, अलकें बल खाती हुई नागिन के समान, भौंहे धनुषाकृति, कोकिल से भी कुछ विशेष मधुर कंठ-स्वर, दृग-बाण काम-शर से भी कुछ अधिक पैने, अरुण अधर बिंब फल से भी अधिकता लिये हुए और यौवन की मादकता मदिरा-पान से भो अधिक मस्ती पर थी।

[८] यदि वे स्त्रियां अपने चंद्र-मुख की रक्षा के लिये चोर (घूंघट) को 'कंपा' (पक्षियों को फांसने की बांस की बनी तीलियां सलियें) और 'चुआ' को लासे का रूप नहीं देते, तो चकोर पक्षी अपनी चंचल दृष्टि डालते हुए उड़ २ कर चोंच और नखों द्वारा (अवश्य) नोच डालते । इसी प्रकार अंग-वर्ण यदि चंपा (पुष्प) की तरह नहीं होता, तो अंगूर के गुच्छों की तरह मुख-कांति को भौंरे कभी नहीं छोड़ते ।

ज्यांरा टेढ़ा झंखणा, बणै मनोमथ बाण ।
भ्रूह धनुख री खंच भर, उर बिच लागत आण ॥
उर बिच लागत आण, मजेजी मारका ।
कढ़ै नलोहा हुवा, कलेजां पार का ॥
कै कै छेल बकैल, आह कर ओट लै ।
केकेइ छेल कराह, लोट पर लोट लै ॥९॥

कै जिण बरियां कोड कर, अनँग तणै ऊफाण ।
आप बिलभ नै ओलगै, जोर बिदेसी जाण ॥
जोर बिदेसी जाण, भरोसो भालतां ।
धर हिवड़ै धीरोज, नपट मग न्हालतां ॥
लुकै झुकै लै ललक, ओ अंक लगावणा ।
आज्योजी गण गोरयां, प्रीतम पांव्हणा ॥१०॥

[९] सुन्दरियों का तिरछी दृष्टि से देखना काम-शर का और वक्र खिंची हुई भौंहें कमान का काम करती थी। वे दृग-बाण हृदय को विद्ध कर आर पार हो जाते थे, परन्तु रक्त से सने हुए नहीं थे। इस प्रकार के प्रहार होने पर, ललकार कर बढ़ने वाले कई रणदक्ष बहादुर (वीर) भी 'आह-आह' करते हुए आड़ में छिप जाते थे और कितने ही कराहते हुए तड़-फड़ाने लगते थे ।

[१०] जिनके पति विदेश में थे, वे सुन्दरियां कामदेव से भरपूर परस्पर प्यार करती थी, अपने पति का स्मरण कर इस त्यौहार पर उनके आजाने का विश्वास कर धीरज के साथ राह देख रही थीं और स्वयं को छिपाती हुई उच्च स्वर से गा गा कर कह रही थी कि, हे बाहु-पाश में लेने वाले प्रियतम ! आप इस गिरिजा-उत्सव पर मेहमान बनकर अवश्य पधारें।

आया तीज न आप जो, त्रिषम नद्यां घण बीह ।
आया राखी नहँ ओई, दुरस बहण रो दीह ॥
दुरस बहण रो दीह, न आया नां डरी ।
दीवाळी गे दीह, (जो) अमावस आड री ॥
होळो करी विदेस, भूल मन भावणां ।
(अब) आज्योजी गणगोर्‌यां, प्रीतम पांव्हणां ॥११॥

कठै गोर सावण कठै, तठै अजाण तुहार ।
जठै आप छायाजरां, बलम लगाई बार ॥
बलम लगाई बार, अँदेसो और भी ।
राजा नहँ दी रजा, जतन रै जोर भी ॥
आणी के धण अवर, कांगरू देस री ।
कें गुर मलिया कान, रखैक रखेसरी ॥१२॥

[११] हे प्रियतम ! तीज त्यौहार (सावनी तीज) पर आप नहीं आये ! खैर तब तो अथाह नदियां बह रही थां, रक्षा-बन्धन का त्यौहार बहिनें मनाती हैं, संभवतः यही कारण है कि आप इस त्यौहार पर भी न आ सके और मैं धीरज धर बैठी रही। इसी प्रकार दीपावली अमावस्या को होने से घर छोड़ना मना है, होली पर संभवतः हमें भूल गये होंगे, परन्तु इस गिरिजा-उत्सव पर बाधक कारण कोई नहीं दिखाई देता ! अतः अब आप अवश्य पधारें।

[१२] हे प्रियतम ! जहां आप रहते हैं, क्या वहां गिरजा उत्सव एवं सावन के त्यौहार नहीं मनाये जाते हैं, इसी लिये आप हमें भूल कर आने में विलंब कर रहे हो ? मुझे यह भी शंका है कि, या तो वहां के राजा ने अपने देश की रक्षा के लिये आपको छुट्टी नहीं दी हो ? अथवा कांगरू प्रदेश की कोई दूसरी स्त्री (जादूगरनी) के प्रेम-पाश में पड़ गये हो, या किसी ऋषी के शिष्य बन गये हो, जिसने कि आपके कान में मंत्र की फूंक मारी हो ।

(पण) ज्यांरा ठाकुर मारका, ज्यांरा लोक जुझार ।
कहै सकल कहणावतां,(आ) लगै न साँच लगार ॥
लगै न साँच लगार, नृपत नादान छै ।
अध पद री कें बैस र, कें गीता ग्यान छै ॥
सज्जन धणी सरीख, प्रभो सर पावतो ।
तोईं गवर तुहांर, अलँग खड़ आवतो ॥१३॥

जो पातो सज्जन जिसो, (तो) आतो हुवर उमीर ।
मण माणक मोताहळां, हिय हिंडुळता हीर ॥
हिय हिंडुळता हीर, झलाँम पवसाख रो ।
घोड़ां हाथ्यां बध्यां, डगर री डाक रो ॥
ईं असवारी आत, पहल आ पूगतो ।
तो ओ गवर तुहांर, (म्हारे) अलोकिक ऊगतो ॥१४॥

[१३] लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि, जैसा स्वामी बहादुर होता है, सेवक भी उसके वैसे ही बहादुर होते हैं, परन्तु मुझे यह (कहावत) असत्य लगती है । हे प्रियतम ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि, आपका स्वामी या तो नादान है अथवा बूढ़ा, या गीता का ज्ञानी है (यही कारण है कि, त्यौहारों पर छुट्टी

नहीं देता) ! यदि आपका स्वामी हमारे महाराणा सज्जनसिंह जैसा होता, तो आप निश्चय ही इस गिरिजा-उत्सव पर अगम्य पथ को भी पार कर आ पहुँचते।

[१४] हे प्रियतम ! यदि आपके स्वामी हमारे महाराणा जैसे होते, तो आप नये रंग ढंग से (आज) आजाते। वक्षस्थल पर मणि, माणिक, मुक्ता और हीरों के बने हुए हार झूलते होते, चमकती हुई पोशाक पहने होते और मार्ग को, घोड़ों एवं हाथियों की डाक द्वारा शीघ्र पार करते हुए इस जुलूस से पहले आ पहुँचते, जिससे यह गिरिजा-उत्सव मेरे लिये अलौकिक (सुख देने वाला) बन जाता।

साद असा नव धण सुणै, अप बीती उर आण।
भर लोयण यक भ्रमर ने, बोली हळवै वाण॥
बोली हळवै वाण, अवै उड़ जाव रै।
(मन्हें) पीऊ भ्रमर मिलाव, पिऊ ने लाव रै॥
पीव बगर अव पोहोर, कलपरा कोल में।
सो तूं जाणै सरभ, (जो) बोलजे बोल में॥१५॥

मत डरजे कीजे मुदो. बोल मके ज्यूं बोल।
अब गणगोर न आवस्यो (तो) कद आस्यो अणकोल॥
कद आस्यो अणकोल, अहळ दन वामतै।
सेणां थांहांरी सेण, सजळ द्रग सास तैं॥
लै साथी भड़ लार, अलँग खड़ आवज्यो।
विलसै अठै बसन्त, जेठ फिर जावज्यो॥१६॥

[१५] प्रौढ़ा प्रोषितपतिकाओं के इस प्रका के वचन जब एक किसी मुग्धा सुन्दरी ने सुने, जिसका पति विदेश में था. तब वह लज्जा वश अपनी सहेलियों से स्वयं को छिपाती हुई अपने में बीती हुई बातों का स्मरण करती

हुई आँखों में आंसू भरकर उड़ते हुए एक भौंरे को चुपके से कहने लगी,— हे भ्रमर ! तू उड़ कर जहां मेरे पति हों, वहां पहुँच जा और उन्हें मेरी दशा से सूचित कर कि, तुम्हारे वियोग में उसके लिये एक प्रहर भी कल्प के समान बीतता है। साथ में लाकर मुझे मिला दे।

(१६) तू निडर होकर जो कह सके कहना। साथ २ यह भी कहना कि, यदि गिरिजा जैसे उत्सव पर भी आप नहीं आ सके, तो सामान्य दिनों में बिना अवधि के आपका आना वैसे ही कठिन है। हे मित्र ! आपके विरह में प्रेयसी के नेत्र सदा सजल रहते हैं, उच्छ्वास डाला करती है। इस लिये अपने साथी वीरों को साथ में ले दुर्गम मार्गों को पार कर गिरिजा महोत्सव पर अपनी प्रिया के पास जाओ और वसंत ऋतु में वहीं पर सविनोद रहो पुनः प्रवास करना ही है तो, जेठ मास में लौट आना।

बार नवोई बसँत छै, नवो बरस छै नाथ।
　　बार नवी कूँपळ बछां, पंकज नवाज पात ॥
पंकज नवाज पात, नवी धण रावळ ।
　　नवा आप छक नूर, अनँग रै आवळै ॥
नपट नवोई नेह, जिको घण जोर रो ।
　　नवा नवी री वात, नवो दन गोर रो ॥१७॥

तरवर फूलै बन अतुल, फूलै कमळ तड़ाग ।
　　फूलै घण नदियां फळां, बेलां फूलै बाग ॥
बेलां फूलै बाग, फूल भर भारका ।
　　फूलै कोकिल कीर, भ्रमर सुक सारका ॥
महलां फूलै मदन, गवर रैं झूलणै ।
　　(जीमें) फूल न आवो कंथ, बसँत रैं फूलणै ॥१८॥

[१७] इस समय वसंत नया है, नव वर्षारंभ है, वृक्षों पर नये पल्लव, नवीन कमल दल, आपकी प्रियतमा भी नई, आप स्वयं भी कामदेव के कारण ऐंठते हुए कांतियुक्त नव वयस्क, दंपति का स्नेह भी नूतन, आपके सुख की कथा भी नवीन और गिरिजा-उत्सव भी (आपके लिये) नवीन है (इस लिये आप अपनी प्रियतमा के पास अवश्य जावें)।

[१८] गिरिजा महोत्सव के अवसर पर वन में बहुत से वृक्ष तालाबों में कमल, सरिताओं में फल (रेतीली नदियों में तरबूज आदि), बागों में लतिकायें, कोकिलें, तोते, भौंरे और शुकसारिकाओं तथा महिलाओं मे मदन फूला नहीं समारहा है। आश्चर्य है कि, ऐसे वसंत ऋतु के फूलने पर भी आप प्रसन्न होकर (उमंग में आकर) अपनी प्रिया के पास नहीं जाते।

कंथ लिये तो कामणी, पिता मात दै पूठ।
कंथ देव सूँई अधक कर, अह निस पूजत ॥
अह निस पूजत ऊठ, अणाँ रा ओक में।
नहचल राखै नाम, लोक परलोक में ॥
जपै कंथ रोइ जाप, रसण रै टारकै।
किसां न आजे कंथ, गहर दन गोर कै ॥१६॥

गहर ईंदन गण गोर कै, आवै खलक उमाह।
नहँ आवै जात्रीक नर, कें नहँ आवे साह ॥
कें नहँ आवै साह, लोभ रा लागिया।
कें नहँ आवै जकै, अष्टपद बागिया ॥
कें नहँ आवे जिकां, नमेलू नार छै।
अवर आवजो आज, त्रियांण तुहार छै ॥२०॥

[१६] पति के प्रेम में पड़ कर स्त्री अपने माता पिता से बिछुड़ जाती है और पति को 'सुख-भवन' में देवता से भी विशेष मान कर रात दिन सेवा करती है। इस प्रकार पातिव्रत्य धर्म-पालन कर अपना नाम लोक और परलोक में कायम रखती है। वह अपनी जिह्वा से हमेशा पति का नाम जपती है। ऐसी स्त्री के साथ गिरजा महोत्सव मनाने के लिये नहीं आना कैसे बन सकता है?

[२०] गिरिजा महोत्सव के दिन तो प्रत्येक जहां अपनी स्त्री होती है वहां पहुँच जाया करते हैं। केवल यात्री, स्वार्थी, वणिक, वृद्ध और स्त्री के साथ जिनका मन मुटाव हो गया है नहीं आते हैं। दूसरों को तो आज अवश्य आना चाहिये। क्योंकि यही एक मात्र स्त्रियों का त्यौहार माना जाता है (स्त्रियों के लिये त्यौहार बार २ नहीं आते; जिससे उनकी उपेक्षा की जाय)।

जसैं कही घण सुघड़ जीं,(कें) आवोय् महल अगूंण।
संखेो भूपत सजन, दन दुल्हो छक दूण॥
दन दुल्हो छक दूण, मुरळती मोसरां।
छज्यां छत्र छहांगीर, चमंरां चोसरां॥
रघुवर वाळै राह, जनकपुर जान रो।
बण्यो हबोळो बार' जहार जिहान रो॥२१॥

जठै कै-कै यूं जप्पियो, राजां-सरहर-राज।
प्रभो पधारै परणवा, अवस निकासी आज॥
अवस निकासी आज, भलै कोइ भाग सूं।
तेड़वियो ईं तोर, णवनपत आध सूं॥
ईडर कृष्णगढ़ असां, पूछ परमाण लां।
तोरण बँध सी तिका, जिकाइ पुराण लां॥२२॥

[२१] इस बीच किसी चतुर स्त्री ने सुन्दरियों को आवाज दी कि, तुम सब मकानों के अग्रभाग पर आकर सदा दुल्हा बने रहने वाले एव मूछों पर ताव दिये हुए महाराणा सज्जनसिंह के दर्शन करो ! देखो तो— इनके मस्तक पर छत्र और छांहगीर शोभा पा रहे हैं। चोसर और चमर उड़ाये जा रहे हैं। इस समय जुलूस में महाराणा सज्जनसिंह ऐसे दीख रहे हैं, मानो रामचन्द्र सजी हुई बारातके साथ जनकपुरी में व्याहने जारहे हों।

[२२] यह सुनते ही कई सुन्दरियां इस प्रकार कहने लगी,— यह राज-राजेश्वर कहीं व्याहने जा रहे हैं, आज यह जुलूस वर निकासी के रूप में निकाला गया है। न जाने किसका सौभाग्य है, जिसने इस पृथ्वी-पति को व्याहने के लिये सम्मान पूर्वक आमंत्रित किया है। यह ईडर या कृष्णगढ़ जैसे राजाओं के यहाँ जाने वाले हैं। यह हम तब ही निश्चित करेंगी, जब राजा के राजद्वार पर जाकर तोरण-वंदन करेंगे।

आं मन मतां उच्छवाँ, होतांवियो हमीर।
पीछोसे पाधारियो, बीर घाट नर बीर ॥
बीर घाट वर बोर, विराजै नाव में।
सामँत सुकव्यां सहित, उमँग ओछाव में ॥
आद्परा उतमाम, सोभ रासीच रो।
(जाणै) बरुण राज दरवार, वण्यो दध बीच रो ॥२३॥

दीहां जेही दीहड़ा, तिण पर वणत तुहार।
तेण तुहारां महँ तुलत, सिथ गणगोरां सार ॥
सिथ गणगोरां साज, उदैगिर उच्छवां।
पीछोला पाथोंद, सुमेळ समुच्चवां ॥
राजै सज्जन राण, सवारी नावरी।
तिका वखतै तारीफ, करै किण कामरी ॥२४॥

[२३] महाराणा सज्जन जो मानो दूसरे हम्मीर थे, मस्ती के साथ उत्सव मनाते हुए पीछोला तालाब के किनारे वीर-घाट (गनगोर घाट) पर आये और उमंग एवं उत्साह पूर्वक सामंत तथा कवियों सहित नाव में बैठे। उस समय ऐसा जान पड़ा मानो प्राचीनकाल में वरुणदेव ने सजावट के साथ समुद्र के बीच सभा आयोजित की हो।

[२४] सब दिनों में श्रेष्ट दिन वे ही हैं, जिन पर त्यौहार मनाये जाते हैं, परन्तु उदयपुर में सबसे बड़ा गिरिजा उत्सव का दिन हैं, क्योंकि (त्यौहार के कारण) पीछोला तालाब सब प्रकार से समुद्र की समानता करता है। इस त्यौहार पर महाराणा सज्जनसिंह का नौका-विहार (जुलूस) देखने योग्य है। कवि (बख्तावर) कहता है कि, मैं इस जुलूस की प्रशंसा कहां तक करूं ?

(पछै) उतर नाव हूँता उछै, सज सुलताण–सिँगार।
हलै सजन पत–हिन्दवो, (जठै) आलम लखत अपार॥
आलम लखत अपार, बार आ बदन छै।
मानो अस ओ मीन, (तो) मौर पर मदन छै॥
मानो अस ओ मोर, (तो) सभैम सकंद छै।
(जो) मानो अंस ओ मरघ (तो) चढ़यो जोइ चन्दछै॥२५॥

केटक अस ओ चोघलो, (तो) ओ पातल असवार।
(जो) ओ छोचो सपतास उज, (तो) सूरज ओहिज सार॥
सूरज ओहिज सार, अखिल उजवाळ छै।
ओ अस ऊचैश्रवा, (तो ओ) पूठ सुरपाळ छै॥
ओ सुग्रीव तो ओई, कृष्ण रै छन्द छै।
ओ खगराज उड़ेत, (तो ओ) चढ़ेत मुकन्द छै॥२६॥

[२५] नौकाविहार के बाद हिन्दू-सूर्य महाराणा घाट पर उतरे और 'सुलतान शृंगार' नाम के अपने घोड़े पर बैठकर जुलूस के साथ २ चले। एकत्रित जन-समूह तब दर्शन कर कहने लगा कि, यदि यह घोड़ा मीन-सदृश है, तो पीठ पर बैठे हुए महाराणा कामदेव हैं। यह मयूर है, तो महाराणा कार्तिकेय स्वामी के समान हैं। यदि यह मृग के समान है, तो महाराणा चन्द्रमा के समान है।

[२६] यदि इसे (घोड़े को) चेटक मान लिया जाय तो यह महाराणा प्रताप हैं। इसे श्वेताश्व माना जाय, तो यह महाराणा प्रकाश दाता सूर्य हैं। इसे उच्चैःश्रवा समझा जाय, तो महाराणा इन्द्र-सदृश हैं। यदि इसे सुग्रीव कहें, तो यह कृष्ण स्वरूप हैं। इसे उड़ने वाला गरुड़ माना जाय, तो इन सज धज के साथ पीठ पर बैठने वाले महाराणा को विष्णु माना जाय।

सज्जन यां उतमाम तूं, महलां चोक मँझार।
　　आयर लियो उडाण पर, सिध सुलतान सिँगार॥
सिध सुरताण-सिँगार, छछोह छटेत रो।
　　पलट उलट रै परां, पटोज पटेत रे॥
कावै कावो करत, लायोड़ी लीक रो।
　　चलै अलाती चक्र, तिकण सूं ई तीख रो॥२७॥

असां फेर अस ऊतरै, धरै हथां हथ धीर।
　　आ गणेस डोढ़ी अनै, वंधे गणपत वीर॥
वंधे गणपत वीर, सारदा साथ रै।
　　वंधे सिव बाणेस, भाव गण भाँत रै॥
वँधे आसिखा विदत, ईस यक लिंग री।
　　हलियो निज रहवास, चीत घण चग री॥२८॥

[२७] महाराणा सज्जनसिंह ने राजसी ठाट बाट के साथ महलों के चौगान में आकर जब अपने घोड़े 'सुलतान शृंगार' को उड़ान पर लिया तब, वह श्रेष्ठ अश्व सोत्साह उड़ता हुआ इस प्रकार उलटने और पलटने लगा मानो कोई पटा चलाने वाला पटा चलाता हो। (सचमुच) जब वह वेग से दौड़ता हुआ कुण्डलाकृति हो जाता था, तब उसकी छटा आलात-चक्र* से भी बढ़ी-चढ़ी मालूम देती थी।

[२८] तदनंतर महाराणा घोड़े से उतरे और सामंत के हाथ पर हाथ रखकर† (सहारा लेकर) गणेश-ड्योढ़ी आये। गणेश, शारदा और बाण-नाथ‡ (शिव) की विशेष भक्ति भाव से वंदना की, साथ ही एकलिंग भगवान के आशिका (पुष्प) माथे चढ़ाई और अपने सुन्दर महलों में चले गये।

चींणी गोख अनोख चँग, चत्रसाली घण चंग।

चंगी बिलंदी चानणी, रजण चंग रै रंग॥

रजत चग रै रंग पुनीत प्रकास री॥

मंजल फरस मसंद, तास जरतास री॥

होथां खमा हुलास, सुतण संभेण रो।

आयो सजन उमीर, लखां सुख लेण रो॥२६॥

मींघालां साहो साँमतां, अदबहरां अनमीक।

मुरतब जिसां मुलाहिजां, समपे बीड़ा सीख॥

टिप्पणी:—* लपटों से जलता हुआ घेरा (चक्र)

† शाही सभ्यता के अनुसार।

‡ वाणदेवी महाराणा कुल की कुल-देवी है, देवियों के पति शिव के माने जाने से 'वाण-नाथ' शब्द से तद्विशिष्ट शिव का अर्थ लिया जाता है।

समपे बिड़ा सीख, वडां ची बाण रै।
　　जुझवां झेल जुहार, कुरब करगांण रै ॥
हाजर रहणां हुथां, ओप अन्नदात रै।
　　सुपह बिराज्यो सजन, मूर रघुनाथ रै ॥३०॥

२६] महल, चीनी मिट्टी के बने झरोखे से एवं चित्रशाला से सुशोभित थे*, विशाल चांदनियां (छतें) रग बिरंगी-सी सुन्दर चमक रही थी। महलों में फर्श पर बढ़िया जरीन मसनद लगी हुई थी। वहां जब महराणा शंभुसिंह के पुत्र राणा सज्जनसिंह आये जो अनेक प्रकार के सुख प्राप्त करने वाले थे, तब आस पास खड़े हुए लोगों ने 'क्षमा-क्षमा'- शब्दोच्चारण किया।

[३०] सिंह-तुल्य जो सामंत महाराणा के संमान-पात्र थे, उन्हें यथा-योग्य सम्मान पूर्वक पुरानी परिपाटी के अनुसार बिदायगी के पान दिये गये तथा वंदना करने पर अन्य वीरों को भी नाभि से ऊपर तक हाथ उठा कर (संमान करके) विदा किया। बाद में रामचन्द्र के समान सतेज महाराणा, हमेशा पास में रहने वाले साथियों सहित सभा कर सिंहासन पर बैठे।

नूर जिसां रघुनाथ रै, सभ बीजी पवसाख।
　　आभूषण साझे अँगाँ महँस करणी री साख ॥
सहँस करण री साख, मोताहलल सांणकां।
　　हीरां पन्नां हूँथ, बणयोड़ा बांणकां ॥
अदां कवण दां ओप, जिहान जहारणं।
　　अनँगराज री अदाइ, (ई) अदा पर वारणं ॥३१॥
वारबधु जिण वार पर, बजत पखावज बीण।
　　गाण गुमक री गथ्थ गत, नचत नवीण नवीण ॥

---

* 'चीनी की चित्रसारी' नामक एक महल विशेष।

नचत नवीण नवीण, जोव्रन जोत री ।
जोत जवाहर जरी, हबोळां होत रीं ॥
कहत न आवै किसांइ, हिन्ववी पारस्यां ।
दियत पलाका दियत, अनँग री आरस्यां ॥३२॥

[३१] रामचन्द्र के समान तेजस्वी महाराणा ने जुलूसी पोशाक बदल कर हमेशा धारण की जाने वाली सुन्दर पोशाक पहनी । मुक्ता, हीरे, पन्ने आदि के बने आभूषण पहनने पर महाराणा सहस्र किरणों वाले सूर्य के समान जगमगाने लगे । (सचमुच) उस समय महाराणा की छवि पर कामदेव की शोभा भी निछावर की जाती थी ।

[३२] बाद में मृदंग और वीणा के स्वर पर नवीन वारांगनाये नृत्य करने लगी । वारांगनाओं के जरी के वस्त्र एवं आभूषण ही नहीं चमक रहे थे, बल्कि यौवन भी दमक रहा था । स्वदेशी राग और गजलें गाई गई थीं, वे बड़ी अनूठी थी, उनका वर्णन न हो किया जा सकता । नर्तकियों की अंगविभा इस प्रकार प्रतिबिंबित होती थी मानो कामदेव के दर्पणों का प्रतिबिंब चारों ओर पड़ रहा हो ।

परिरँभ रंभा रा प्रसिध, लेत परसपर लग्ग ।
मैंण करण मन मैंणका, बणलै छटा बलग्ग ॥
बण लै छटा बलग्गा, न्हाल लै जोतमा ।
ताल लिए तुल तान, तिराज तिलोत्तमा ॥
मंजूधारा मंजु, मंद मुसक्यांण लै ।
बसणै उर उरबसी, बसीकर बाण लै ॥३३॥

घड़ी सात बजता घुमँड राणो त्रियो रहाप ।
निजां करग्गां निज जणां, सूंधो पान समाप ॥

सुंधो पान समाप, सु बांछत मारिया।
बगसे रजा सुबोल, रीझ घण रारियां ॥
छटा अनोपम छाय, उतंग अवास रै।
रहयो घणै सुखराच, पुनीत प्रकास रै ॥३४॥

[३३] नर्तकियां एक दूसरे से सट कर रंभा के समान परिरंभन (आलिंगन) कर रही थी, अनोखे ढंग से निहारती एवं निराली ही छटा बिखाती हुई ताल के साथ २ तान लेकर (गा कर) तिलोत्तमा के समान सुशोभित होती थी। मंजुघोषा के समान उनकी मंद मंद मुस्कान थी एवं वे (वारांगनायें) वश में करने वाली वाणी के द्वारा उरमें बस जाने पर उर्वशी के समान मानी जाती थी।

[३४] सात घड़ी रात बीतने पर महाराणा (सज्जनसिंह) जो मानो दूसरे राणा राहप थे. सिंहासन से उठे और निकट रहने वाले साथियों को अपने हाथों से सुगंधित तांबूल दिये एवं आग्रह के साथ पुरस्कार भी दिया। बाद में साथियों को घर जाने की आज्ञा दे महाराणा अनोखी छटा फैलाते हुए, दीपक की पांतों से दीप्त ऊंचे बने राज प्रासाद में पहुँचे और सुख में लीन हो गये।

वार सदानां वज्जिया, सहनायां घण माद।
आलम खांनो ओळगे, वाँध सुरावट वाध ॥
वाँध सुरावट वाध, ललक्कां लेहरै।
आतसबाजी अजब, छूट अणछोह रै ॥
तारा तारां तीसां, प्रसर पर पारखै।
जुड़ महतापां जगी, अरक रेइ आरखै ॥३५॥
हिन्दू भाण सरूप-हर, जे जेइ उच्छव जोर।
करत जिकण मांही कियो, गहर उछव गणगोर ॥

गहर उछव गणगोर, नोख नागंग रै।
मेळा सहर मँझार, अनोपम आण रै॥
तिकण तणी तारीफ, बसेख बिसाल में।
"बखत" कठालग बदै, झोख झमाळ में॥३६॥

[३५] तब नक्कारों और शहनाइयों के स्वर में स्वर मिला कर गायक-गण स्मृति गान करने लगे। आतिशबाजी छोड़ी गई, जिससे आकाश की नक्षत्रमाला बिखरी हों, ऐसा भासित होने लगा। महताबें (एक प्रकार की आतिशबाजी) इस प्रकार जलाई गई मानों सूर्योदय हुआ हो।

[३६] वैसे तो हिंदूसूर्य महाराणा स्वरूपसिंह के सुपौत्र (सज्जनसिंह) प्रत्येक त्यौहार पर उत्सव मनाते ही रहते थे, फिर भी गिरिजा-उत्सव के दिन नौका-विहार कर एवं शहर में आयोजित मेले में जुलूस निकाल कर इस त्यौहार को विशेष ढंग से मनाते थे। कवि (बखतावर) कहता है कि, इसका वर्णन बहुत ही विस्तृत है, जिसे मैं केवल इस 'झमाल' नामक गीत में कैसे कर सकता हूं?

दोहा

सज्जन पीछोलो सुभर, गहर दिहाड़ो गोर।
नृप सरवर उच्छव नयण, अगा न देख्या ओर॥३७॥

[३७] कवि कहता है, यहां के महाराणा सज्जनसिंह, यहां का पीछोला-तालाब और यहां का गिरिजा-उत्सव अनुपम है। ऐसा राजा, ऐसा तालाब और ऐसा उत्सव कहीं नहीं देखा गया।

महाराणा फतहसिंह

[३८] दोहा

फजल कियण राणा फता, रणजीता घल रोड़।
आज किसा गढ़ ऊपरां, (तूं) चढ़ै नाथ–चीत्तोड़॥१॥

गीत (सावभड़ा)

बँधै बेड़ तोपाण पड़ दमँग आगळ बँधै,
नोपतां गड़ गड़त मेध आदव नँधैं।
उड़त नीसाण असमाण छुवता अधै,
सजण-तण विजैरी दसम कुण सर सँधै ॥१॥

भणक रण घुघर तंदूर आरव भड़त,
खुल हसत खँभारां लँगर डग खड़हड़त।
पमंगा हरवड़ां हींस चोवळ पड़त,
(तूं) खुमाण छत्रधर आज किण सर खड़त॥२॥

चूंड चहुवाण सगतांण सारँग चलै,
हळवदा कमँध जगदेव चाळक हलै।
भ्रात-नृप-राणवत आद होह भड़ भलै,
करण-हर अमै बळ कसै चढ़सी कलै॥३॥

चमूं-पायक चलत समँद लहरां चढ़ण,
वळोवल जसोला हाक लागत वढ़ण।
पूछवै मुसाभा पतो नावत पढ़ण,
केलपुर तूहाळो कणी माथै कढ़ण ॥४॥

खुद ढ़ली तखतरा गिया खा खा खता,
जुढ़ै सिंभ हिंदथळी जाहर जता।
सलामी लखां री भलत नजरां सथा;
(असी) फतै कीयणै कणी चढ़ै राणा फता ॥५॥

अर्थः— (दोहा) हे चित्तौड़-स्वामी महाराणा फतहसिंह ! आज आप रण-वाद्य पर डंका दिलवा कर किस दुर्ग पर चढ़ाई कर रहे हैं ?

अर्थः— (गीत) पंक्ति बद्ध तोपों को दाग कर आगे बढ़ाई जा रही हैं, भाद्रपद के मेघों की तरह तोपतें घड़-घड़ा रही है, आधे २ आसमान को छूती हुई पताकायें फहरा रही हैं। हे सज्जनसिंह के पुत्र ! आपकी यह विजयादशमी (दशहरा) किस दुश्मन के साथ मनाई जायेगी ?

रणकुंतों (वाद्य विशेष) के घुघरु, तंदुर और अरबी बाजे लगातार बज रहे हैं, कुम्भालों से छोड़े गये हाथियों के लंगर खड़-खड़ा रहे हैं, घोड़ों के पैरों की हड़बड़ाहट और हिन-हिनाहट चारों ओर हो रही हैं। हे दूसरे ही छत्रधारी खुमाण ! आज आप किस पर चढ़ चले हो ?

चुंडावत, चौहान, शक्तावत, सारंगदेवोत, झाले, राठौड़, पँवार, चालुक्य और आपके सगोत्रीय राणावत आदि जितने क्षत्रिय हैं, सब सजकर चल रहे हैं। हे महाराणा कर्णसिंह के वंशज ! (कहो तो) आज आप ऐसी सैन्य शक्ति लेकर किस दुर्ग पर अधिकार करेंगे ?

तरंगित समुद्र के समान पैदल सेना बढ़ रही है, आगे बढ़ने के लिये हलकारे (पुकारने वाले) आवाज दे रहे हैं, मुसाहब-गण सामंतों के नाम, ग्राम आदि की पूछ ताछ कर रहे हैं। हे केलपुरेश्वर (मेवाड़-राणा) ! आज आप तैयारी कर किस पर निकले हैं ?

सिंध से आकर जो प्रसिद्ध यवन दिल्ली के तख्त पर आरुढ़ हुए, वे जब यहां आये थे तब आपत्ति में पड़कर लौट गये थे और अब नष्ट प्राय हैं। इस लिये अब आप लाखों जनो के द्वारा अभिवंदित होते हुए तथा उनकी ओर दृष्टि डाल कर उनका सम्मान करते हुए, हे महाराणा फतहसिंह ! किस दिशा को फतह करने के लिये सुसज्जित हुए हैं ?

गीत [४०]

लारां जाजुळी सधीरां बीरां घाट कै बणाव लीधां,

ठावा मेदपाट कै गिरन्दां घेरा ठांण ।

आठकै ऊपरां झंपै न झरै चाटके येहा'

दुठेलां जगावै कळां झाटके दिवाण ॥१॥

(जे) भद्रजात्यां उधेड़े कपाळ मोताहळा भूखा,

होफांनाद हेड़े घटा गाज रे हिड़ात ।

(जे) काळो बाघ जेहा बनां भेड़े जिकां लाग केड़े,

(तूं) छोड़े निजां भुजां रे भरोसे हिन्दू छात ॥२॥

(जे) कळा काळ वाळी हुतां न रुके अलंघी कोटां,

गणाणां अगोटां प्रलै झाल् वाल्ी गोट ।

तिकां बोल माथे सामां ले ले ताल् ताल् वाल्ी,

(तूं) चूके निको चित्तोड़ो दुनाल् वाल्ी चोट ॥३॥

(जे) हाथलां उपाड़ लीधां डंडधारी दूता ढोड़ा,

धड़चाणां आड़ लीधां पारध्यां धेधींग ।

हाका चाळ फाड़ लीधां गंजाया न गंजे हलां,

(असा) सिंघळी जे पाड़ लीधां रंजे फतैसींघ ॥४॥

आरै आरै आखेटां जिपाण घाम घोम आरै,

उमीरी न धारै धारै करेती आराम ।

वाबरेलां डालामथां मारै मारै जिका वातां,

जोड़ में उबारे भूरो सजनैस जाम ॥५॥

खेलां बीर खेल खराखरीको नाहरां खाते,
राखै हेक रंगां बराबरीको रचाव ।
दुहूँ बाहां सरीखो सरीखो गुड़ाकेस दीखो,
राजां तीरंदाजां तीखां तीखो राणी राव ॥६॥

अर्थः- भगवान एकलिंग के दीवान (महाराणा फतहसिंह) तेज एवं धीर धारी बहादुरों को साथ ले ठाट बाट के साथ मेवाड़ के प्रसिद्ध पहाड़ों के चारों ओर घेरा डालते हैं और आहट पाते ही झपटने वाले एवं मचान पर शिकारी को देख कर भी नहीं डरने वाले सिंहों पर अपनी तुपक का वार करते रहते हैं ।

यह हिन्दू-छत्र महाराणा, भद्र जाति हाथियों के भालःस्थल को मोतियों के लालच में पड़ कर वीदीर्ण करने वाले, मेघ-गर्जना पर गरजने वाले, तथा जो कालिका के वाहन के समान सिंह हैं, उनका पीछा कर अपने बाहुबल के विश्वास पर छेड़ा करते हैं ।

ज्वाला फैलातीहुई तुपकों के सामने भी ऊँची दीवारोंको लांघतेहुए जो नहीं रुकते और जो, रात होने पर घाटियों में शिकार के लिये बैठे हुओं पर प्रलय-ज्वालापुंज की तरह झपटते हैं, उन सिंहों पर ललकार कर महाराणा फतहसिंह अपनी दुनाली बंदूक का अचूक वार कर देते हैं । यह दुनाली बंदूक ताली के बजने जितने समय में असंख्य वार कर देती है ।

पंजे उठाने पर जो यम-दूत के समान दिखाई देते हैं, वार करने के लिये छिपे हुए सन्नद्ध अच्छे शिकारियों को भी जो चीर डालते हैं, घेरा तोड़ कर जो किसी से दबते नहीं है, ऐसे सिंहों को पछाड़ कर महाराणा फतहसिंह प्रसन्न होते हैं ।

(महाराणा फतहसिंह) तेज घामकी भी परवाह नहीं करते हैं, अमीरीको भी दूर रख देते हैं और शस्त्र-प्रहार करने में सुख-अनुभव करते हुए प्रत्येक समय मृगया में विजय प्राप्त कर लेते हैं । (वास्तव में) महाराणा सज्जनसिंह के युवक पुत्र सिंहों को मार कर बदले में गो रक्षा करते हैं ।

जितने खेल हैं, उनमें वीरों का खेल एक मात्र शिकार करना है। महाराणा इसी खेल को सिंहों की समानता करते हुए खेलते हैं। यह सव्य अपसव्य (दोनों भुजाओं से) अर्जुन की तरह तुपक के वार करते हैं। यही कारण है कि, महाराणा अच्छे धनुर्धारी राजाओ के सिरमौर कहे जाते हैं।

महाराणा भूपालसिंह

[४१] गीत बड़ो साणोर (शुद्ध)

लाखांई द्रब लुटांवण प्रथीपत लखण हर ।
मीसवद वियो संभेण मागै
मंडै दत्त छौल तिण समैं फतमल तणों ।
लहर सारुप री भोक लागे ॥१॥
समँद री बेल हद सरा मर मदाई ।
वसू ज्यों भाद्रवे मेह वूठे ॥
रोकड़ां भड़ां यों मचाणे रात दन ।
तिसांई हिंदवो नाथ तूठे ॥२॥
मोतीयां हिलोलां दीयणे महोदध ।
धरा सुरईंद्र चवमास धारे ॥
मतंगा तुरंगा भूषणां मेवाड़ो ।
विलालो लुटावे मास वारे ॥३॥
यल परां छुटे ज्यों मेघ अभियावणों ।
वरीसण लंक रो रघू वाजे ॥
तपोधन संभु वरदानपें तुठे ज्यों ।
उटे भुवपाल रा हाथ आजे ॥४॥

(रचयिता — कविराव गुमानसिंह)

अर्थः— महाराणा गढ़ लक्ष्मणसिंह के वंशज सिशोदिया-नरेश अमित धन लुटाते हुए, साक्षात् अपने पितामह शंभूसिंह के समान दिखाई देते हैं और जब यह फतहसिंह के पुत्र (भूपालसिंह) उदारता की उमंग (उत्साह) में आते हैं, तब महाराणा स्वरूपसिंह के समान दान की लहरों से छक कर झूमने लगते हैं।

हिन्दू-पति महाराणा (भूपालसिंह) रात दिन धन की वर्षा करते हुए साक्षात् समुद्र के समान तूफान पर आजाते हैं अथवा भादौं के मेघ की तरह वर्षा करते हुए दिखाई देते हैं।

विनोद-प्रिय महाराणा तूफान पर आये हुए समुद्र की तरह मोतियों का ढेर लुटाया करते हैं। इन्द्र पृथ्वी पर केवल चार मास ही वर्षा करता है; परन्तु मेवाड़ स्वामी तो बारहों महीने हाथी, घोड़े, आभूषण देकर दान वर्षा करते रहते हैं।

जिस प्रकार वर्षा करने के लिये मेघ उमड़ता है, लंका देने के लिये रामचन्द्र उमंग में आये थे और वरदान देने के लिये शिव प्रसन्न होते हैं। उसी तरह आज दान देने के लिये महाराणा भूपालसिंह के हाथ उठते हैं।

सँहस दोय विक्रमाण बिये लगत साल रे,
पाख सुद चवेदस चेत पेले।
उदय रवि किरण ज्यूं बचन हर–उदय रा,
फता–सुत ताहरा हुकम फेले ॥१॥
अघाहट सांसणा कूड़की उठंतर,
खतीजे सबूतां वगसखाने।
नृपत भोपाळ किव पटा कर नवीना,
महर हर हिंद रा कबज माने ॥२॥
अपी रघुनाथ निज अजे नह ऊथपी
लुभ्यो नहँ सोवनी लंक लेणे।

रही घर रीत यण सदा कुल रघू री,
दिवाकर चंद दुहुँ साख देणे ॥३॥
लंक पत विभीखण कर्यो बिन लोभ रे,
पती अवधेस रे उदक पाणा।
महीपत दूसरा कल विच मनायो,
रघू कुल कथन रो सांच राणा ॥४॥

(रचयिता:—सांवलदान आशिया, स्थान कड़िया)

अर्थः— हे उदयसिंह के वंशज फतहसिंह के पुत्र (महाराणा भूपाल) ! आपने (प्रथम) चैत्र शुक्ला चतुर्दशी वि. सं. २००२ के दिन उदयमान रवि-रश्मि की तरह प्रकाश बढ़ाते हुए, दान में दी हुई भूमि का बन्दोबस्त* (स्वाधिकार) उठाने का आदेश दिया।

हे हिंदू-सूर्य महाराणा भूपालसिंह ! आपने दान में दिये हुए ग्रामों पर कर्मचारियों द्वारा किये गये बन्दोबस्त को हटा कर 'बख्शी खाने' में फिर से सबूतें (प्रमाण) दर्ज करवाई और उन ग्रामाधिपों को प्राचीन अधिकार फिर दे दिये।

हे महाराणा ! रामचन्द्र ने स्वर्ण की लंका (दान में) देकर आजतक लेने का लोभ नहीं किया है। यही रघुकुल की रीति आपके घर में भी चली आ रही है, सूर्य चन्द्र जिसके साक्षी हैं।

टिप्पणी:—* दान में दी गई भूमि (गांवों) के लिये पहले यह आदेश प्रसारित किया गया कि, जिन २ के पास प्रमाण-पत्र (सबूत) न हों उन २ की भूमि पर राज्य की ओर से बंदोबस्त हो। तदनुसार अप्रमाणित भूमि पर सरकारी कब्जा हो गया था। पुनः आदेश दिया गया कि ६० वर्ष से जिसका कब्जा है, उसे दे दी जाय और उस पर सरकारी कब्जा न हो।— यह महाराणा भूपालसिंह की उदारता का प्रमाण है।

निःस्वार्थ अयोध्यापति (श्री राम) ने विभीषण को लंकापति बनाया। आपने भी इस कलियुग में रघुवंशी होने की बात सभी राजाओं के सामने सत्य कर दिखाई।

रघुवंश नामावली

[४२] गीत

वँदण कर वदां धन धन आदि व्हा नारायण,
कमल सूं ब्रह्मा व्है बेद गाया।
मरीची कश्यप रै हुआ सूरज सुणै,
जेण रै विवस्वत–मनु जाया ॥१॥

हुआ इक्ष्वाकु ज्यां अयोध्या बसाई,
जणा रै विकुक्षी हुवो बांको।
लड़ाकू ककुथ असुराण लड़ झाड़िया,
सुरां सुरनाथ रो भाल आंका ॥२॥

कुवलयअस धुंध हण बज्यो धुंधमार वो,
जणी रै युवनअस लाल जायो।
चक्कवै मानधाता हुवो जेण घर,
सत्यव्रत सत्य व्रत धरण आयो ॥३॥

हुवो हरिचंद महात्याग जाणै जगत,
दुर्ग–रोहीत रोहीत ठाण्यो।
हरित चंचू विजय रूरुक व्रक नरेसर,
जगत बलि विकट बाहूक जाण्यो ॥४॥

अर्थः— [१] आदि देव (नारायण) की वदना कर धन्यवाद देता हूँ, जिनकी नाभी से कमल उत्पन्न हुआ और कमल से वेद के रचयिता ब्रह्मा। कहा जाता है कि, उसके बाद क्रमशः मरीचि, कश्यप और सूर्य हुए, सूर्य से वैवस्वत मनु हुए।

[२] मनु से इक्ष्वाकु पैदा हुए, जिन्होंने अयोध्या बसाई। इक्ष्वाकु से विकुक्षि, विकुक्षि से काकुत्स्थ पैदा हुए, (जिन्होंने देवासुर-संग्राम में देवताओं का पक्ष लेकर दानवों का नाश किया और देवता एवं इन्द्र के सिर पर अहसान किया)।

अर्थः—[३] काकुत्स्थ के बाद कुवलयाश्व हुआ, जो धुंध नामक दानव को मार कर 'धुंधमार' कहलाया। धुंधमार से युवनाश्व, युवनाश्व से चक्रवर्ती राजा मान्धाता और मान्धाता से सत्यव्रत की उत्पत्ति हुई, जिसने सत्यव्रत का पालन किया।

[४] बाद में महात्यागी हरिश्चन्द्र पैदा हुआ, जो संसार प्रसिद्ध है। हरिश्चन्द्र से रोहितगढ़ का निर्माता रोहिताश्व और फिर क्रमशः हरित से चंचु, चंचु से विजय, विजय से रुरुक और रुरुक से वृक नामक राजा की उत्पत्ति हुई। बाद में इस पृथ्वी पर विकट बलशाली राजा बाहुक हुआ।

सगर व्हो जणां सुत समँद मत खोदिया,
असमँजस असमँजस काज कीधा।
पितामह जग्ग अंशुमान पूरो कियो
दिलीपै जग्ग कर दान दीधा ॥५॥
भगीरथ गंग ला जगत पावन कर्यो,
भयो सुत नभग अंबरीख भारी।
भयो अयुतायु ऋतु पर्ण भूपां सरे,
छज्यो सुद्‌दास बड़ छत्रधारी ॥६॥

अर्थः—[५] क्रमशः राजा सगर पैदा हुआ. जिसके साठ हजार पुत्रों द्वारा पृथ्वी खोदी जाने पर जो गड्ढे बने, वे सात समुद्र बन गये हैं। सगर से असमंजस की उत्पत्ति हुई, जिसने आश्चर्य जनक काम किये। बाद में अंशुमान उत्पन्न हुआ, जिसने यज्ञ-अश्व को कपिल-आश्रम से लाकर अपने पितामह सगर के यज्ञ को पूर्ण कराया। अंशुमान से दिलीप हुआ, जिसने (६६) यज्ञ किये और खूब दान किया।

[६] घोर तपस्या कर भूतल पर जगतारिणी गंगा लाने वाला भगीरथ हुआ फिर श्रुत, नाभाग, अंबरीष, अयुतायु, ऋतुपर्ण और नृप शिरोमणि सुदास नामक राजा हुए।

हुओ सौदास जण दानवां हराया,
रज्या अशमक्क मुलक्क राजा।
भयो खटवांग असुरां लड़ै भांजिया,
दिगविजै करी रघु साज साजां ॥७॥

इन्दुमति वर्‌यो अज नरेशां विजै कर,
हुओ दसरत्थ जिण बचन पाल्यो।
राम मरजाद पाली हण्या राखशां,
पिता रो हुकम जिण नको टाल्यो ॥८॥

अर्थः—[७] बाद में सौदास राजा हुआ, जिसने दानवों को पराजित किया। सौदास से अश्मक तथा अश्मक से मूलक राजा पैदा हुआ। मूलक से खट्वांग, जिसने (देवताओं के पक्ष में रह कर) दानवों का संहार किया। बाद में चढ़ाई कर दिग्विजय करने वाला प्रसिद्ध रघु हुआ।

[८] रघु से अज उत्पन्न हुआ, जिसने राजाओं पर विजय पाकर विदर्भ राजकुमारी इन्दुमती का स्वयंवर में वरण किया। अजसे, प्राण गँवाकर भी वचनों

को पालने वाला दशरथ हुआ। बाद में रामचन्द्र की उत्पत्ति हुई, जिसने पिता की आज्ञा पालते हुए मर्यादा की रक्षा की एवं राक्षसों का वध किया।

हुवो कुश भूप जीं दुजय दाणव हण्यो,
अतिथि पशु माणवां दुःख मेट्यो ।
निषध नृप कियो इकछत्र शासन इळा,
भूप सारां चरण परश भेट्यो ॥९॥

रूप री खान नल नृपत बांको बली,
प्रजाप्रिय भूप नभ सुयश धारी ।
पुंडरिक करी दिगविजै प्रमणां हणे,
क्षेमधनु जीतियो भ्रम सारी ॥१०॥

अर्थः—[९] राम से, दुजय नामक दानव को नष्ट करने वाला कुश उत्पन्न हुआ। महाराज अतिथि ने बेगार-प्रथा आदि आपत्तियां मनुष्यों से दूर की; यही नहीं पशुओं को भी अपने राज्य में स्वतंत्रता दिलाई। महाराज निषध ने पृथ्वी पर एक छत्र राज्य किया, जिसके चरणों को सब राजा छूते थे।

[१०] महाराज नल जितने सुन्दर थे, उतने ही बलवान भी थे। नभ-नरेश प्रजावत्सल एवं यशोवान थे। पुंडरीक ने शत्रुओं को मारकर दिग्विजय की। इसी प्रकार क्षेमधनु ने भी समूची पृथ्वी विजय की।

महीपति देवनिक गुणां री महाणव,
भयो नृप अहीनगु मधुर भाषी ।
पारिजात–उ हुवो पारिजात-उ जिसो,
करी दल बल नृपत कीत साखी ॥११॥

अकथ गुण उकथ बज्रनाभ प्रण दृढ़ बली,
शंखण ध्युषिताश्व शिव भक्त सांचो ।
विष्वसह नीति में निपुण विबुधां वलभ,
रह्यो हिरणाभ रण रंग राचो ॥१२॥

अर्थः—[११] बाद में गुणों के सागर देवनिक नरेश हुए। अहिनगु राजा बड़े मधुर भाषी थे। पारिजात. उदारता में — पारिजात (कल्प वृक्ष) क समान हुए। बाद में दल एवं बल नामक दो राजा उत्पन्न हुए, जिन्होंने विशेष यश प्राप्त किया।

[१२] राजा उकथ में अकथनीय गुण थे। वज्रनाभ दृढ़ प्रतिज्ञ हुए। उनके बाद शंखण, शंखण से शिव-भक्त ध्युषिताश्व की उत्पत्ति हुई। विश्वसह राजा, नीति-निपुणों एवं विद्वानों में प्रिय थे। इसके बाद हिरण्यनाभ उत्पन्न हुए, जो युद्ध के रंग में रँगे रहते थे।

पुष्य नृप प्रजा रो सदा पोषण कियो,
धनुद्धर ध्रुसंधी बीर भारी।
सुर्दशन विलासी बहुल विद्या तणो,
अगनिव्रण काम अवतार धारी ॥१३॥

शीघ्र मरु पद्म श्रुत सुसंधी महस्वा,
विश्रुत पुणि व्रहदवल वीर बांको।
कौरवां पक्ष व्है भिड़्यो भारथ महीं,
झाड़ झड़ पड़्यो जग सुजस जाको ॥१४॥

अर्थः—[१३] महाराज पुष्य-प्रजा पोषक थे। ध्रुसंधि अच्छे धनुर्धारी वीर हुए। राजा सुदर्शन विविध विद्याओं का प्रेमी था। अग्निवर्ण कामदेव की तरह सुन्दर था।

[४] बाद में शीघ्र, मरु, पशुश्रुत, सुमंधि, महेश्वान, विश्रुत और फिर वांकावीर बृहद्बल उत्पन्न हुआ, जिसने कौरवों का पक्ष लेकर महाभारत युद्ध में विपक्षियों को मार कर यश प्राप्त किया और स्वयं मारा गया।

बृहतक्षय उरुक्षय वत्स नृप वत्सव्यू,
हुवो प्रतिव्योम भल भानु भाखै ।
भयो सहदेव बृहदश्व पुणि भानुरथ,
अभिप प्रतिकाश्व सू प्रतिक आखै ॥१५॥

हुवो मरुदेव सूनखत किनराक्ष हद,
अन्तरिख्र सुतप जित–अमित ओणी ।
रा–बृहद धर्मि ओ कृतंजय रणंजय,
संजय त्यों शाक्य सुद्धोद छोणी ॥१६॥

अर्थः—[१५] तदनंतर बृहत्क्षय, उरुक्षय, वत्स, वत्सव्यूह, प्रतिव्योम, भानु, सहदेव, बृहदश्व, भानुरथ, प्रतीकाश्व हुए।

[१६] बाद में क्रमशः मरुदेव, सुनक्षत्र, किन्नराक्ष, अंतरिक्ष, सुतपा, अमित्रजीत, बृहदराज, धर्मी, कृतंजय, रणंजय, संजय, शाक्य और शुद्धोदन की उत्पत्ति हुई।

राहुलो प्रसणजित क्षुद्रक कूलक सुरथ,
सुमित सूं सूर रो वंश वाढयो ।
हुवो वज्रनाभ महारथी अतिरथी नृप,
अचल पुणि कनक कुल कलश चाढ्यो ॥१७॥
अवध सूं राज लवपुरी थाप्यो इणा,
कनक सोराष्ट्र ने विजय कीधी ।

हुवो महसेन नृप विजय त्यों अजय भो,
अभँग मदनेश जस छाक पीधी ॥१८॥

अर्थः—[१७] (शुद्धोदन के बाद) राहुल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, कूलक, सुरथ और सुमित्र नामक राजा हुए। सुमित्र से सूर्यवंश का विस्तार हुआ। तदनंतर वज्रनाभ, महारथी, अतिरथी, अचलसेन और कनकसेन पैदा हुए, जिसने कुल पर कलश चढ़ा दिया (अधिक शोभा बढ़ा दी)।

[१८] (सुमित्र के बाद उक्त राजाओं के शासन-काल में) किसी ने अयोध्या-राज्य करते हुए लवपुरी (लाहौर) पर अपना राज्य स्थापित किया। और कनकसेन ने सौराष्ट्र पर विजय पाई। बाद में महासेन, विजयसेन, अजयसेन, अभंगसेन, मदनसेन आदि महा कीर्तिशाली राजा हुए।

सिंहरथ विजय पुणि पद्मदित हरहदित,
सुयसदित सुमुखदित सोम राजा।
शिलादित वल्लभी राज रवि रो भगत,
मार अरियां मर्‌यो अवनी काजा ॥१९॥

गुहादित राज ईडर थप्यो अगंजो,
नागदित नागद्रह थान थाप्यो।
भोगदित देवदित आशवादित्य उग्र,
नगर रच आशपुर नाम आप्यो ॥२०॥

अर्थः—[१९] फिर क्रमशः सिंहरथ, विजयादित्य, पद्मादित्य, हरादित्य, शेषादित्य (सुयश), सुमुखादित्य एवं सोमादित्य की उत्पत्ति हुई। सोम से शिलादित्य पैदा हुआ, जो वल्लभी पर राज्य करता था और सूर्य का उपासक था। शत्रुओं को मार कर पृथ्वी के लिये यह मारा गया।

[२०] शिलादित्य से गुहादित्य हुआ, (जिससे यह राजवंश 'गुहिलोत' कहलाया) इसने ईडर पर अपना राज्य स्थापित किया था। तदनंतर नागद्रह

(नागदा मेवाड़) को अपनी राजधानी बनाने वाला नागादित्य पैदा हुआ। आगे चल कर भोगादित्य तथा देवादित्य हुए। देवादित्य से उत्पन्न होकर आश्वादित्य ने आसपुर (आहड़) बसाया। (इसी से बाद में सब आहड़े कहलाये)।

भोजदित ग्रहादित बाद बापो हुओ,
मोरियां मार चित्तोड़ लीधी।
इष्ट इकलिंग रो अखँड उण थापियो,
कलम हण उजली कीत कीधी ॥२१॥

खुमाणे-बीस चव बार रब खांडिया,
भयो गोवीन्द महिइन्द नीको।
अल्लहट सींहवर्मा हुवो उणीरे,
शकतिकुम्मार भो हार हीको ॥२२॥

अर्थः—[२१] फिर भोजादित्य, ग्रहादित्य हुए। ग्राहदित्य से बापा ने जन्म लिया, जिसने मोरी राजपूतों से चित्तौड़ छीन लिया और एकलिंग को अपना इष्टदेव माना। इसी ने ईरान तक तलवार चला कर मुसलमानों का संहार किया और पृथ्वी पर कीर्ति फैलाई।

[२२] बापा से खुमाण हुआ। इसने भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमानों के साथ २४ बार युद्ध किया (और उन्हें सिंधु नदी के इस पार नहीं आने दिया। इसीके नाम से यह राजवंश आगे चल कर खुमाण कहलाया)। उसके बाद गोविन्द, महेन्द्र, अल्लहट, सिंहवर्मा एवं शक्तिकुमार हुए।

शालीवाहण तणे हुवो नरवाहणो,
अंबपरसाद घर कीत जायो।
हुवो नरवर्म नरवै नृपत उत्तमो,
भूप भैरु तखत पुंज आयो ॥२३॥

कर्णदित भावसी गात्रसी बीर बड़,
वंशपालक हुवो हंस राजा।
भूप योगिन्द्र योगिन्द्रज्यूं भणीजे'
बेरड़े ठाणिया बडम काजा ॥२४॥

अर्थः—[२३] आगे शालिवाहन, नरवाहन, अंबाप्रसाद, कीर्तिवर्मा, नरवर्मा, नरवै, उत्तम, भैरव और पुंजराज नामक राजा हुए।

[२४] उसके बाद कर्णादित्य, भावसिंह, गात्रसिंह और हंसराज※ की उत्पत्ति हुई। बाद में योगेन्द्र (योगराज) योगेन्द्र (शिव) समान हुआ। (इसी के नाम से आगे चल कर यह वंश 'योगराज' उपाधि से भूषित हुआ)। तदनंतर 'बेरड़' हुआ, जिसने बड़े २ कार्य किये।

बेरसी हुवो जिण कहे अरिसी बिता,
तेजसी चंड उपनाम चोखो।
समर-विक्रम हुवौ, पित्थ रो सहायक,
रच्यो रणसिंघ इक दुर्ग नोखो ॥२५॥

राणपद पिता रण नाम जुत राहपो
बाज घण बेरियां घाण कीधा।
सुतण छह तिण तणा गया तीरथ रखण,
शीश हिक साथ हिक बाद दीधा ॥२६॥

अर्थः—[२५] पश्चात् वैरसिंह, अरिसिंह, अरिसिंह से तेजसिंह हुआ, जिसका उपनाम चंडसिंह था। बाद में रावलसमर-विक्रम हुआ, जो (शाहबुद्दीन से लड़ते हुए) पृथ्वीराज का सहायक बना था। आगे रणसिंह हुआ, जिसने 'आहोर' नामक दुर्ग की स्थापना की।

टिप्पणीः—※ इसे वंशपाल भी कहते हैं।

[२६ रणसिंह से राहप हुए, जिन्होंने अपने पिता के नाम पर राणा-पद* प्राप्त किया और बहुत से शत्रुओं का संहार किया। इनसे छः पुत्र उत्पन्न हुए, जो मुसलमानों के द्वारा गयातीर्थ आदि स्थानों पर अत्याचार होते देख कर (अत्याचारों को मिटाने के लिये) एक के बाद एक सिर देते (कटाते) हुए युद्ध में मारे गये।

नाम त्यां नरपती दिनकरण मुणिजे,
जसकरण नाग पूरण नीको।
गया पृथीपाल रख महत बड़ गया रो,
हुवो जिण मथां हर हार हीको ॥२७॥

भुवणसी तण्यो तिण तणै जयसी जबर,
लखण लघु छतां सो सुरग पायो।
घणा घमसाण व्हा घणां भट घूमिया,
राण लघु, रावलां जोर छायो ॥२८॥

अर्थः—[२७] उन छहों पुत्रों के नाम नरपति, दिनकरण, यशकरण, नागपाल, पूर्णपाल और पृथ्वीपाल थे। इन्हीं राणाओं ने 'गया' आदि तीर्थों के महत्त्व की रक्षा की और अपने सिर चढ़ा दिये। उनके मुण्डों की माला बनाकर शिव ने धारण की।

[२८] फिर भुवनसिंह, भुवनसिंह से जयसिंह हुआ। जब जयसिंह की मृत्यु हुई, तब उसका पुत्र गढ़-लक्ष्मणसिंह छोटा था। (ऐसी दशा में) युद्ध होने पर कई सामंत मारे गये। जिससे रावल शाखा वाले जो आहड़, नागदा के शासक थे, सशक्त बन गये।

टिप्पणीः—* इसी शब्द से 'राणावत' शब्द रूपान्तरित हुआ है

छयांळी बरस तक जैत, तेजो, समर,
रतन चीतोड़ पै राज कीधो।
अलादी आवतां लड़ाकू गढ़-लखण,
सुतण द्वादश सहित शीश दीधो ॥२९॥

अरीसी काम शाका समै आवियो,
युवा हम्मीर व्है मूंज मार्‌यो।
थापियो राज चित्तौड़ गढ़ पै थिरां,
यवन सोनींग नहँ धीर धार्‌यो ॥३०॥

अर्थ:—[२९] बाद में छियालीस वर्ष तक (रावल शाखा के) जैत्रसिंह तेजसिंह, समरसिंह एवं रत्नसिंह ने चित्तौड़ पर राज्य किया। अलाउद्दीन के चढ़ आने पर योद्धा गढ़-लक्ष्मणसिंह ने अपने बारहों सुतों सहित लड़ते हुए मस्तक चढ़ा दिये।

[३०] गढ़ लक्ष्मणसिंह का बड़ा पुत्र अरिसिंह भी (उसी अलाउद्दीन की चढ़ाई में) काम आया। इसके बाद अरिसिंह के पुत्र हम्मीर ने अपने विपक्षी मुंज (बालेछा राजपूत) को मार कर तथा यवनों एवं सोनिगरों को भयभीत कर चित्तौड़ पर राज्य स्थापित किया।

खेत्र वश हाडवां किया जवनां हणयां,
लाख कर गया रो मेट कीधो।
राण मोकल घणां खद संघारिया,
जड़- द्विजां वेद रो बोध दीधो ॥३१॥

कीत रो थंभ कुल-कुंभ कुंभे कियो,
बाँधने छोड़िया बादशाहां।

ठाणियाँ भाणिया दुरँग केता दुरग,
थाप उत्थापिया नाह—नाहाँ ॥३२॥

अर्थः—[३१] राणा हम्मीर के बाद क्षेत्रसिंह हुआ, जिसने 'हाड़ा' राजपूतों को वश में कर यवनों का संहार किया। क्षेत्रसिंह से 'गया' आदि तीर्थों पर लगे हुए कर को दूर करने वाले लाखा उत्पन्न हुए ।

मोकल ने भी कई यवनों का संहार किया और अपने राज्य में जितने अपढ़ ब्राह्मण थे; उन्हें वेद पढ़ा कर ज्ञान दिया ।

[३२] बाद में अपने वंश के कलश समान राणा कुम्भा उत्पन्न हुए, जिन्होंने बादशाहों को (छः २ महीना) कैद किया और छोड़ा । अपनी कीर्ति का स्तंभ बनवाया ! इन्होंने कई दुर्गों का निर्माण एवं नाश किया । कई राजाओं को राज-पद दे दिया और कइयों को पदच्युत किया ।

निपूतां तणो धन लियो नहं रायमल,
मालवी खद रो माण मार्यो ।
खाग री झाट खुमाण दीधी खतम,
सुरसुती रूप बाणास धार्यो ॥३३॥
चोरासी घाव सांगेण तन सोहिया,
मोहिया रोक रथ व्योम मागां ।
जोहिया सूर निज वंश रा सूर री,
बबर पै चालती वेर खागां ॥३४॥

अर्थः—[३३] बाद में रायमल हुआ, जिसने संततिहीन व्यक्तियों के मर जाने पर उसका धन नहीं लिया एवं मालवा के मुसलमान बादशाह का घमंड चूर २ कर दिया । उस खुमाण वंशज रायमल के खड्ग-प्रहार वर्षा के समान हुए, जिससे बनास नदी ने सरस्वती का रूप ले लिया । (खून से लाल पानी हो गया) ।

[३४] तदनंतर सांगा उत्पन्न हुआ, जिसने कई युद्ध किये। इसके शरीर पर चौरासी घाव सुशोभित थे। बाबर के साथ जब तलवार चली, तब सूर्य, अपने वंश के वीर राणा के युद्ध को देख मुग्ध होगया और रथ आकाश में ही रोक लिया।

कपाटां बंध कीधा न रतने कधी,
बिक्रमी बार भो भियो शाको।
उदै धीमंत बलवंत अनमी रह्यो,
शाक तीजे मर्या वीर लाखों ॥३५॥

बरस दश आठ तक खाग परताप री,
चकत्तां-भड़ां रे शीश चाली।
खोय स्वतंत्रता हुवो परतंत्र नी,
लाज हिंदवाण री हाथ झाली ॥३६॥

अर्थः—[३५] राणा सांगा से रत्नसिंह उत्पन्न हुआ, जिसने कभी भी अपने दुर्ग के द्वार बन्द नहीं किये। उसका छोटा भाई विक्रमादित्य हुआ, जिसके समय में बहादुरशाह द्वारा चितौड़ पर दूसरा शाका हुआ। इसके बाद विक्रमादित्य के छोटे भाई उदयसिंह हुए, जो बुद्धिमान, बलवान एवं बड़े स्वाभिमानी थे। उनके समय में अकबर द्वारा तीसरा शाका चित्तौड़ पर हुआ, जिसमें लाखों वीर मारे गये।

[३६] उदयसिंह से प्रताप उत्पन्न हुए, जिनकी तलवार अठारह वर्ष तक मुगल सैनिकों पर चलती रही। उन्होंने हिंदुओं की लज्जा रखी और स्वतंत्रता खोकर परतंत्र नहीं हुए।

अमर आहव किया बरख बाईस लग,
करण मझ देश थी कलम काढ़्या।
जगत रो खाग अर त्याग जाहर जगत,
समप दत कन्यां गज शीश चाढ़्या ॥३७॥

अड़्यो औरंग सूं रूक झल राजसी,
शरणदातार ने शरण दीधी।
जयसमँद ताल बड़, राण जयसी रच्यो,
अमर नहँ दिली दिश दीठ कीधी ॥३८॥

अर्थः—[३७] बाद में अमरसिंह ने बाईस वर्ष तक मुगलों से लोहा लिया। कर्णसिंह ने मालव देश से मारकूट कर मुगलों को भगा दिया। राणा जगतसिंह के कृपाण और दान की महिमा लोक प्रसिद्ध है, जिसने बंदीजनों को चौरासी गांव दान में दिये और हाथियों पर बिठाये।

[३८] इनके बाद राजसिंह हुआ, जो तलवार लेकर औरंगजेब से अड़ा-रहा और जिसने शरणदाताओं को शरण दी*। जयसिंह ने जयसमुद्र का निर्माण किया। बाद में दूसरे अमरसिंह हुए, जिन्होंने दिल्ली की ओर दृष्टि तक नहीं डाली (यद्यपि उन्हें, बादशाह से विरुद्ध होकर राजागण ने दिल्ली तख्त लेने के लिये विवश किया)।

राण सगराम जगतेश परतापसी,
राजसी अड़स निज टेक राखी।
हुवो हम्मीर भीमेण दानी वड़म,
नकार्यो नहीं संसार साखी ॥३९॥

ज्वान सरदार रे पाट सारूपसी
साहबां शरण दे सुजस छायो।
डूबती जाझ मँजधार मेवाड़ री,
तरण-तारण बणी पार लायों ॥४०॥

टिप्पणी:—*औरंगजेब के जमाने में डरकर गोसांई श्रीनाथ एवं द्वारिकाधीशजी की प्रतिमाएं मेवाड़ में ले आये थे। महाराणा ने जिनकी सुरक्षा की।

अर्थः—[३६] बाद में क्रमशः संग्रामसिंह, जगतसिंह, प्रतापसिंह, राजसिंह एवं अड़सी (द्वितीय अरिसिंह) हुए जिन्होंने भी अपनी टेक निभाई। फिर महाराणा हंमीरसिंह (द्वितीय) के बाद भीमसिंह हुए, जो बड़े दानी थे। उन्होंने कभी इनकार नहीं किया, इस बात का ससार साक्षी है।

[४०] तदनंतर जवानसिंह और सरदारसिंह हुए। सरदारसिंह से महाराणा स्वरूपसिंह उत्पन्न हुए, जिन्होंने (सन् १४ के गदर में) अंग्रेजों को शरण दे यश प्राप्त किया और संसार को तिराने वाले ईश्वर का मानों अवतार लेकर मेवाड़ के डूबते जहाज को पार लगाया।

शंभु प्रिय सबां रो होय रहियो सदा,
सजन री सजनता किसी भाखां।
फब्यो फतमाल मरजाद रख राम ज्यू,
रूप वो राजसी बस्यो आँखां ॥४१॥

भूप भूपाल ने भूलजे किण भती,
दुनी में अवतर्यो दीन बंधू।
त्यागकर महा बड़भाग वमियो सुरग,
हिंद रो सारथी ज्ञान सिंधू ॥४२॥

अर्थः—[४१] राणा शंभुसिंह सब के प्रिय हुए। पश्चात सज्जनसिंह हुए, उनकी सज्जनता कहां तक कहें? तदनंतर मर्यादा संरक्षक रामचन्द्र के समान फतहसिंह सुशोभित हुए। उनका वह राजसी रूप आज भी हमारी आंखों के सामने है।

[४२] महाराणा भूपालसिंह कैसे भुलाये जा सकते हैं? वे वास्तव में दीन बन्धु (परमेश्वर) के अवतार थे। उन ज्ञान सिंधु एवं भारत के सारथि ने महान त्याग कर स्वर्गारोहण किया।

भूप-भगवंत उण तखत पर ओपवै,
कदै नहँ पिता री काण मेटी।
कपूती पणा वै दीठ करड़ी रखी
भलां यें सपूती दोड़ मेटी ॥४३॥

नमो इण तखत ने, नमो यारां चरित,
खाग अर त्याग में नहीं खामी।
अधक सूं अधक नृप अवतर्या अणी घर,
नमो रघुराज रा वंश नामी ॥४४॥

(रचयिताः- कविराव मोहनसिंह)

अर्थः—[४३] उन्हीं महाराणा भूपालसिंह के तख्त पर आज राणा भगवतसिंह सुशोभित हैं। आपने कभी भी अपने (स्वर्गीय) पिता के अनुशासन को नहीं लाँघा। कुपुत्रता पर आपने कड़ी नजर रखी और सुपुत्रता को दौड़ कर अंक में उठाली (हृदय से लगा ली)।

[४४] इस वंश में तलवार चलाने में, दान देने में एक से एक बढ़ कर होते रहे हैं। इसी लिये इस तख्त को, इनके चरित्रों को और इस रघुवंश की मैं बार २ वंदना करता हूँ।